महाकोशल-साहित्य-माला—२रा ग्रथ

कर्तव्य

गोविन्ददास

प्रकाशक

महाकोशल-साहित्य-मन्दिर

गोपालबाग, जबलपुर

मुद्रक
महेन्द्रनाथ पाण्डेय
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

दूसरा सस्करण
स० १९९२

प्रकाशक
महाकोशल-साहित्य-मन्दिर
गोपालबाग, जबलपुर

निवेदन

प्रस्तुत नाटक का लिखना, मैंने तारीख १६ जनवरी सन् १९३० की रात को दमोह-जेल मे आरभ किया और इसके लिखने में इतना अधिक मन लगा कि केवल चार दिनो मे अर्थात् तारीख २१ जनवरी की दोपहर को यह समाप्त हो गया। एक आस्तिक वैष्णव-कुटुम्ब मे जन्म लेने तथा बारह वर्ष की अवस्था तक अपने पितामह परमभगवदीय पूज्य राजा गोकुल-दासजी के निरतर सग रहने के कारण, मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचद्र और लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचंद्र के चरणो मे बाल्यावस्था से ही मेरी भक्ति रही है। पडितो द्वारा श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण को मैंने दो बार सुना है और श्रीमद्भागवत् को सुनने का तो न जाने कितने बार सौभाग्य प्राप्त हुआ है, क्योकि ऐसा कोई वर्ष ही नही जाता जब श्रीमद्भागवत् का अर्थ-सहित साप्ताहिक पाठ हमारे घर मे न होता हो। हरिवश, स्कन्द, विष्णु, पद्म तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण के श्रीकृष्ण-खण्ड एव गर्ग-सहिता मे भी मै कृष्ण के लीलामृत का पान कर चुका हूँ। महाभारत का भी बहुत-सा अश देखा है। तुलसीकृत रामायण तथा भगवत्गीता का तो नित्य पाठ ही करता हूँ। रघुवश, उत्तर रामचरित-नाटक और सूर-सागर को मै भारत के काव्य-जगत् के ज्वाज्वल्यमान रत्न मानता हूँ। अत यद्यपि इस नाटक के लिखने मे मुझे केवल चार दिन लगे, परन्तु इसके वर्णित विषय पर मै बाल्यावस्था से ही विचार करता आ रहा हूँ।

हमारे यहाँ अवतारो मे राम और कृष्ण ये ही दो सबसे बड़े अवतार है। भगवान् कृष्ण को तो पूर्णावतार माना गया है। भगवान् रामचद्र

से भी उनमे दो कलाएँ अधिक मानी जाती है। बहुत काल तक मै इसका रहस्य न समझ सका था। इस सम्बन्ध मे हमारे देश के धर्माचार्यों आदि ने जो युक्तियाँ दी है उनसे भी मेरा पूरा समाधान न होता था। बहुत सोचने-विचारने के पश्चात् मैंने इसका जो रहस्य समझा है उसी विचार (Idea) पर इस नाटक की रचना हुई है। इतने पर भी मैंने यह नाटक भगवान् रामचद्र और भगवान् कृष्णचद्र को मनुष्य मानकर ही लिखा है। यदि इन दोनो को मनुष्य मानकर भी कुछ लिखा जावे तो भी मै कह सकता हूँ कि पूर्व अथवा पश्चिम, किसी भी दिशा के, किसी भी देश में, किसी भी साहित्यकार को ऐसे नायक नही मिले है, जैसे भारत के साहित्यकारो को राम और कृष्ण के रूप मे मिले है। इसी प्रकार सीता के पति-प्रेम और राधा तथा गोपियो के विशुद्ध एव अनन्य प्रेम के सदृश, प्रेम का वर्णन भी मुझे तो अगरेजी-द्वारा, विदेशी साहित्य का निरन्तर अध्ययन करते रहने पर भी, किसी भी विदेशी साहित्य मे पढने को नही मिला। यूनान देश के महाकाव्य 'ईलियड' और 'ऑडेसी' के नायक-नायिकाओ से रामायण और महाभारत के नायक-नायिकाओ की तुलना मुझे तो हास्यास्पद जान पडती है।

इस देश मे राम और कृष्ण पर आज तक न जाने कितने साहित्य-सेवियो ने लिखा है। जिन्होने अन्य नायको को अपनी कृतियो का नायक बनाकर लिखा भी है उनमे कोई भी नायक इतने ऊँचे न तो अब तक उठ सके है और न भविष्य मे इसकी सम्भावना ही है। जिन नायको पर सहस्रो वर्षों से इस देश के तत्ववेत्ता और महाकवि लिखते आये है और जिन पर लाखो पृष्ठ लिखे जा चुके है, उन पर मै कोई नवीन, स्वतत्र या मौलिक रचना कर सकूँगा यह मै कभी भी नही मान सकता, अत जिस कवि की जो युक्ति मुझे रुचिकर हुई, मैने उसे निस्सकोच इस रचना में ले लिया है। इसमे कुछ पद्य भी है, पर मैने उन्हें प्राचीन कवियो की कृतियो मे से ही लेना

उचित समझा। कुछ पद्य ऐसे है जिनमे दो-दो कवियो की कविता का मैंने मिश्रण कर दिया है। एक बात मुझे अवश्य करनी पडी है कि पद्यो के अन्त की, इन कवियो के नाम की, छाप निकाल देनी पडी है, क्योकि ये पद्य इस नाटक मे सीता, राधा, गोपियो आदि के द्वारा गाये गये है और इन पात्रो का, इन गानो को रगभूमि मे, कवियो के नामो के साथ गाना सम्भव नही था। साथ ही प्रसगवश इनमे से कुछ पद्यो के दो-चार शब्दो मे परिवर्तन भी करना पडा है।

पौराणिक और ऐतिहासिक नाटक, उपन्यास अथवा कहानी लिखने मे इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि जिस समय की कथा का वर्णन हो, उस समय का पूरा चित्र उस नाटक, उपन्यास या कहानी में आ जावे तथा समय-विपर्यय-दोष (Anachronism) न आने पावे। इस दृष्टि से इस नाटक मे, मै कहाँ तक सफल हो सका हूँ, इस सम्बन्ध में यद्यपि मुझे कुछ भी कहने का अधिकार नही है तथापि इस विषय मे, मेरे सामने जो कठिनाइयाँ आयी है और उन कठिनाइयो के हल करने का मैंने जो प्रयत्न किया है उस सम्बन्ध मे, मै दो शब्द अवश्य कह देना चाहता हूँ।

सबसे पहली कठिनाई मेरे सम्मुख समय के विभाजन की उपस्थित हुई। अमुक व्यक्ति की इतने हजार वर्ष की आयु हुई, अमुक व्यक्ति ने इतने हजार वर्ष राज्य अथवा तपस्या की, आदि बातो से, पुराण आरम्भ से अन्त तक भरे हुए है। ऐसे स्थानो पर, वर्ष के लिए अधिकतर सम्वत्सर शब्द का उपयोग हुआ है। सम्वत्सर शब्द का अर्थ, बारह महीने, अथवा ३६५ दिन का वर्ष माना जाय या नही, इस सम्बन्ध मे प्राचीन विद्वानो मे भी मतभेद है। जैमिनी की मीमासा मे सम्वत्सर का अर्थ केवल एक दिन लिया गया है। महाभारत के वन-पर्व के, तीसरे अध्याय मे एक स्थान पर, भीमसेन ने सम्वत्सर का अर्थ केवल एक महीना किया

है। महाभारत के प्रसिद्ध टीकाकार पण्डित नीलकण्ठ ने सम्वत्सर का अर्थ छै मास माना है। यह बात नीलकण्ठ ने , विराट्-पर्व मे, उस समय कही है जब विराट् अपनी पुत्री उत्तरा का विवाह बृहन्नला (अर्जुन) के साथ करना चाहता था और अर्जुन ने उत्तरा का विवाह अपने पुत्र अभिमन्यु से करने को कहा। नीलकण्ठ ने अपने कथन के प्रमाण मे अन्य अनेक विद्वानो के मत भी उद्धृत किये है। वेदोक्त प्रार्थनाओ तक मे, जब शत अर्थात् १०० वर्षो तक सुख-पूर्वक जीवित रहने की कामना की जाती है, तब हमे सम्वत्सर का अर्थ प्रसंग के अनुसार ही करना पडता है। नाटक की कथा को सम्पूर्ण-रूप से सगठित रखने के लिए समय का विभाजन तथा दर्शको को उसका ज्ञान करा देना मै आवश्यक समझता हूँ। पौराणिक कथा अपने काल के अनुरूप होते हुए अस्वाभाविक भी न हो, इस बात पर ध्यान रखने के लिए मुझे इस नाटक मे, समय के विभाजन मे, स्वतत्रता लेनी पडी है। परन्तु इस स्वतत्रता को लेते हुए भी मैने इस बात का ध्यान रखने का प्रयत्न किया है कि रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणो मे राम और कृष्ण-कथा के जिन प्रसगो का समय निश्चित रूप से कह दिया गया है उसमे, जहॉ तक सम्भव हो, कोई परिवर्तन न करूँ। दृष्टान्त के लिए, राम के १४ वर्ष के वन-गमन अथवा कृष्ण के ११ वर्ष की अवस्था तक व्रज मे निवास या पाण्डवो के १२ वर्ष तक देश-निर्वासन एव एक वर्ष के अज्ञात-वास के समय मे, मैने कोई परिवर्तन नही किया, परन्तु राम के ग्यारह हजार वर्ष तक राज्य करने और कृष्ण के सवा-सौ वर्ष तक जीवित रहने के समय मे मुझे परिवर्तन करना पडा है। कृष्ण का सवा-सौ वर्ष तक जीवित रहना मै अस्वाभाविक नही मानता, क्योकि आज भी अनेक व्यक्ति इससे अधिक अवस्था के जीवित है; तथापि यदि उनका सवा-सौ वर्ष तक जीना मान लिया जाय तो उनके जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली अन्य घटनाओ से उनकी अवस्था का मेल नही खाता। एक

ही दृष्टान्त से मेरा अभिप्राय स्पष्ट हो जायगा। महाभारत अथवा पुराणो मे, जहाँ-जहाँ कृष्ण और पाण्डवो की भेट का वर्णन आया है वहाँ-वहाँ, कृष्ण ने युधिष्ठिर और भीम को, अवस्था मे अपने से बडा होने के कारण, प्रणाम, अर्जुन को समवयस्क होने के कारण आलिङ्गन किया है और नकुल तथा सहदेव को, छोटे होने के कारण, आशीर्वाद दिया है। मृत्यु के समय यदि कृष्ण की अवस्था १२५ वर्ष की मान ली जाय तो युधिष्ठिर तथा भीम की इससे अधिक माननी पडती है, धृतराष्ट्र की उनसे अधिक और भीष्म की उनसे भी अधिक। भारत-युद्ध के १८ वर्ष पश्चात्, धृतराष्ट्र की मृत्यु हुई और धृतराष्ट्र की मृत्यु के १५ वर्ष पश्चात् कृष्ण की मृत्यु, यह महाभारत मे स्पष्ट लिखा है। मृत्यु के समय यदि कृष्ण की अवस्था १२५ वर्ष मानी जाय तो महाभारत के समय ९२ वर्ष माननी पडती है। भीम की इससे अधिक, युधिष्ठिर की इससे अधिक तथा धृतराष्ट्र और भीष्म की तो कही अधिक। भीष्म ने भारत-युद्ध मे जिस वीरता के साथ युद्ध किया उससे उन्हे इतना अधिक वृद्ध नही माना जा सकता। फिर युद्ध के समय अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु की अवस्था केवल १६ वर्ष की थी, द्रौपदी के पाँचो पुत्रो की तो इससे भी कम। पाण्डवो की इतनी वृद्धावस्था मे सभी पुत्रो का उत्पन्न होना भी नही माना जा सकता। और फिर पाण्डवो का, युद्ध मे, जिस प्रकार का वर्णन है उससे वे इतने वृद्ध प्रतीत भी नही होते। अत मैंने मृत्यु के समय कृष्ण की अवस्था १२५ वर्ष की न मानकर ८० वर्ष के लगभग मान ली है। कृष्ण की इतनी अवस्था मानने से, उनके जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली समस्त घटनाओ से, उनकी अवस्था का मेल खा जाता है। नाटक मे ऐसे स्थल भी आये है जहाँ मुझे उन समयो का उल्लेख करना पडा है, जिन समयो का रामायण, महाभारत और पुराणो मे स्पष्ट-रूप से कोई उल्लेख नही है। अयोध्या के सिहासन पर बैठने के पश्चात् सीता का त्याग कितने समय के बाद हुआ इसका रामायण मे

कोई वर्णन नही है। हाँ, रामायण के वर्णन से यह भासित अवश्य होता है कि सिहासन पर बैठने के कई वर्ष पश्चात् उनका त्याग हुआ होगा। परन्तु मुझे दूसरी बात ही स्वाभाविक जान पडती है। सीता का त्याग प्रजा मे अपवाद होने के कारण हुआ था। एक तो अपवाद सदा नयी बात का ही अधिक हुआ करता है, दूसरे, सीता का त्याग गर्भावस्था मे किया गया, अत उनका गर्भवती होना अपवाद को और अधिक तीव्र बना देने का कारण हो सकता है। इसीलिए मैने राम के सिहासन पर बैठने के केवल ८ मास के पश्चात् सीता का त्याग माना है। इसके अतिरिक्त कृष्ण के व्रज मे ११ वर्ष की अवस्था तक रहने का, हरिवश, भागवत तथा अन्य पुराणो मे वर्णन है। उन्होने द्वारका जाने के पश्चात् रुक्मिणी के साथ विवाह किया यह भी उल्लेख है, परन्तु मथुरा मे उन्होने किस अवस्था तक निवास किया यह कही नही लिखा। हॉ, जरासिन्ध ने मथुरा पर १८ बार आक्रमण किया यह अवश्य लिखा है। यहॉ मैने यह मान लिया है कि जरासिन्ध ने हर वर्ष शरद् ऋतु मे आक्रमण किया, क्योकि उस समय शरद् ऋतु मे ही युद्ध होने के वर्णन पाये जाते है। इस प्रकार मैने ११ वर्ष की अवस्था से २९ वर्ष की अवस्था तक कृष्ण का मथुरा मे निवास तथा ३० वर्ष की अवस्था मे रुक्मिणी से विवाह करना माना है।

दूसरी जो कठिनाई मेरे सामने उपस्थित हुई वह कथा का एक निश्चित रूप बनाना था। राम और कृष्ण की कथा प्राचीन ग्रन्थो मे हर स्थान पर, एक-सी नही है। छोटे-मोटे पाठान्तर हो इतना ही नही, पर कई स्थल ऐसे है जहॉ मुख्य-मुख्य बातो मे ही अन्तर है। दृष्टान्त के लिए कही शत्रुघ्न को कैकेयी का पुत्र माना गया है तो कही सुमित्रा का। इसी प्रकार जहॉ महाभारत, हरिवश और भागवत् मे राधा का नाम तक नही है वहॉ ब्रह्मवैवर्त पुराण मे राधा ही सब कुछ है। कथा का निश्चित रूप देने मे मुझे स्वतत्रता लेनी पडी है, परन्तु मैने यह प्रयत्न अवश्य किया है कि

अपनी कथा का कोई न कोई प्राचीन आधार अवश्य रखूँ। इस सम्बन्ध मे मेरा मत है कि किसी भी आधुनिक लेखक को यह अधिकार नही है कि पौराणिक कथा की छायामात्र लेकर, उसे तोड-मरोडकर, वह एक नयी कथा की ही रचना कर डाले। हाँ, किसी कथा के अर्थ (Interpretation) के सम्बन्ध में लेखक को स्वतत्रता अवश्य रहती है। इस स्वतत्रता का उपयोग मैने भी किया हैं। राम तथा कृष्ण के अनेक कार्यो का जो अर्थ आजकल लगाया जाता है उससे मेरा मत-भेद होने के कारण, मेरे मतानुसार जो अर्थ युक्ति-सगत है, वही मैने लगाया है। साथ ही, चूँकि मैने राम और कृष्ण को इस नाटक मे मनुष्य माना है, ईश्वर नही, इसलिए ऐसे स्थलो पर जहाँ राम और कृष्ण के कार्य ईश्वरीय कार्य जान पडते है मैने उन कार्यो को ऐसा रूप देने का प्रयत्न किया है कि जिसमे वे मनुष्य के लिए असम्भव न जान पडे। फलत मुझे राम-कथा मे सीता की अग्नि-परीक्षा, सीता का पृथ्वी-प्रवेश, राम के साथ अवध की प्रजा का स्वर्गारोहण आदि, तथा कृष्ण-कथा मे भी कृष्ण का गोवर्द्धन-धारण तथा रास-मण्डल मे अनेक रूप लेने इत्यादि का वर्णन दूसरे ही प्रकार से करना पडा है। मैने इस बात का भी उद्योग किया है कि दोनो चरित्रो की सभी महत्त्वपूर्ण घटनाओ का, किसी न किसी प्रकार, इस नाटक मे समावेश हो जावे, पर, इस नाटक के दोनो भाग एक ही रात मे खेले जा सके इसलिए मैने दोनो चरित्रो को बहुत सक्षेप से लिखा है। यह हो सकता है कि किसी पाठक को किसी चरित्र का कोई अश आवश्यकता से अधिक विस्तृत तथा किसी को कोई अश अत्यधिक सक्षिप्त जान पडे, पर यह रुचि-विभिन्नता सदा ही रहती है और इस विषय मे लेखक को अपनी रुचि के अनुसार ही चलना पड़ता है।

. तीसरी कठिनाई मेरे सामने रामायण मे वर्णित वानर-भालुओ के विषय में आयी। स्वाभाविकता के नाते वानर-भालुओ को वानर-भालुओ के समान-रूप में रगमञ्च पर लाकर उनसे मनुष्य के सदृश बातचीत

नही करायी जा सकती और प्राचीन वर्णनो की सर्वथा अवहेलना कर उन्हे साधारण मनुष्यो के समान भी नही दिखाया जा सकता। रामायण मे वर्णित वानर-भालु कौन थे इस सम्बन्ध मे अब तक विद्वानो ने न जाने कितनी चर्चा की है। इनमे दो मत के लोगो की प्रधानता है—एक वे, जो यह मानते है कि ये मनुष्यो की जगली जातियाँ थी और वानर-भालु नाम से प्रसिद्ध थी, दूसरे वे, जो यह मानते है कि ये मनुष्यो की जगली जातियाँ थी, पर, विशेष-विशेष अवसरो पर वानर-भालुओ का पूजन कर, उनके चेहरे और मूँछे लगाकर नृत्य आदि किया करती थी। मैंने पहले प्रकार के विद्वानो के मत को मानकर वानर-भालुओ को मनुष्यो की जगली जातियाँ माना है और उनके वर्ण तथा मुखाकृति को वानर-भालुओ से मिलता हुआ मान लिया है। हाँ, पूँछ को मै कोई स्थान नही दे सका हूँ।

चौथी कठिनाई जो मेरे सम्मुख उपस्थित हुई वह वेश-भूषा की थी। यद्यपि रामायण और महाभारत-काल की वेश-भूषा के सम्बन्ध में, अब बहुत-कुछ लिखा जा चुका है तथापि अभी भी एक विषय विवाद-ग्रस्त है ही कि उस समय सिले हुए कपडे पहने जाते थे या नही। अधिकाश विद्वानो की यही राय है कि भारतवर्ष मे सुई नही थी अत कपडे सीने का प्रश्न ही नही था। परन्तु, यदि सुई नही थी तो चमडे के जूते और युद्ध के समय हाथ मे पहनने के दस्ताने किस वस्तु से सिये जाते थे? चर्म के पद-त्राण और हाथ मे पहनने के गोधागुलिस्त्राण का वर्णन रामायण और महाभारत दोनो ग्रथो मे, एक नही अनेक स्थलो पर, आया है। यह हो सकता है कि सिलाई की सुविधा होते हुए, आज भी, जिस प्रकार स्त्रियाँ बिना सिली हुई साडियाँ तथा पुरुष बिना सिली हुई धोतियाँ पहनते है, उसी प्रकार उस काल मे स्त्रियाँ और पुरुष दोनो ऊपर के अग में भी बिना सिला कपडा पहनते हो। बहुत-कुछ सोचने-विचारने के पश्चात् मैने इसी मत

को मानकर स्त्री-पुरुष दोनो की वेश-भूषा बिना सिले कपडो की ही रखी है। आभूषण पहनने की उस समय बहुत अधिक प्रथा थी, इसे सभी मानते है, अत आभूषणो की मैने भी प्रचुरता रखी है।

प्राचीन काल का दिग्दर्शन और भी अच्छा हो सके इसलिए सम्बोधन के अवसर पर मैने प्राचीन सम्बोधनो का ही उपयोग किया है और भाषा मे भी अरबी-फारसी के शब्दो से बचकर अधिकतर सस्कृत के शब्दो का ही प्रयोग किया है। इसी प्रकार भावो में भी इस बात का ध्यान रखने का प्रयत्न किया है कि आधुनिक काल का उनपर कम से कम प्रभाव पड़े। दृश्यो के वर्णन मे भी इस बात पर लक्ष्य रखा है कि दृश्य प्राचीन काल के अनुरूप ही हो। इतने यत्नो के पश्चात् भी मै इसे स्वीकार किये बिना नही रह सकता कि जिस काल को मनुष्य ने देखा नही, जिस काल मे वह रहा नही, उसका दिग्दर्शन कराना बहुत कठिन बात है। अत्यधिक प्रतिभाशाली व्यक्ति ही यह कर सकते और समय-विपर्यय-दोष से बच सकते है। मेरे सदृश व्यक्ति का इस दिशा मे पूर्णरीति से सफल होना कठिन ही नही वरन् असम्भव है।

बाल्यावस्था से जिन पाद-पद्मो की इस हृदय ने वन्दना की है, जो दो महान् जीवन, इस तुच्छ जीवन के आदर्श रहे है, उनके सम्बन्ध मे, यह टूटी-फूटी रचना लिखने के कारण, मै अपने को तथा अपनी समस्त रचनाओं को कृत-कृत्य मानता हूँ।

गोविन्ददास

नाटक के पात्र, स्थान

पूर्वार्द्ध—

पुरुष—

(१) **राम**—प्रसिद्ध मर्यादा-पुरुषोत्तम

(२) **लक्ष्मण**—राम के छोटे भाई

(३) **वसिष्ठ**—सूर्यवश के कुल-गुरु

(४) **वाल्मीकि**—प्रसिद्ध ऋषि

(५) **शम्बूक**—शूद्र तपस्वी

स्त्री—

(१) **सीता**—राम की पत्नी

(२) **सरमा**—विभीषण की पत्नी

(३) **बासन्ती**—वाल्मीकि की पाली हुई कन्या

अन्य पात्र—

अयोध्या के पुरवासी, किष्किन्धा के वानर, भालु, लका के राक्षस, प्रतिहारी

स्थान—अयोध्या, पचवटी, किष्किन्धा, लका, दण्डकारण्य, वाल्मीकि का आश्रम

उत्तरार्द्ध—

पुरुष—

(१) **कृष्ण**—प्रसिद्ध लीला-पुरुषोत्तम

(२) **बलराम**—कृष्ण के बडे भाई

(३) **उद्धव**—कृष्ण के मित्र

(४) **अर्जुन**—प्रसिद्ध पाण्डव

स्त्री—

(१) **राधा**—कृष्ण की सखी

(२) **रुक्मिणी**—कृष्ण की पत्नी

(३) **द्रौपदी**—पाण्डवो की पत्नी

अन्य पात्र—

व्रजवासी गोप-गोपी, मथुरा तथा द्वारका के पुरवासी और भौमासुर के यहाँ की कन्याएँ

स्थान—गोकुल, मथुरा, द्वारका, कुण्डनपुर, प्राग्ज्योतिषपुर, इन्द्रप्रस्थ, कुरुक्षेत्र, प्रभास-क्षेत्र

पूर्वार्द्ध

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान—अयोध्या मे राम के प्रासाद का एक कक्ष

समय—उष काल

[कक्ष पुराने ढंग का बना हुआ है। कक्ष की छत विशाल पाषाण स्तंभों पर स्थित है। प्रत्येक स्तंभ के नीचे गोल कमलाकार कुंभी (चौकी) और ऊपर गजशुण्ड के समान भरणी (टोड़ी) है। कुंभियो और भरणियों पर खुदाव है, जिसपर सुवर्ण का काम है और यत्र-तत्र रत्न जड़े हैं। तीन ओर भित्ति है, जो सुन्दर रंगो से रँगी है और चित्रकारी से भी विभूषित है। तीनो ओर की भित्ति में दो-दो द्वार है, जिनकी चौखटें और कपाट चन्दन के बने है। इन चौखटों और कपाटो में खुदाव का काम है और यत्र-तत्र हाथीदाँत लगा है। द्वार खुले है और इनसे बाहर के उद्यान का थोड़ा-थोड़ा भाग दिखाई देता है, जो उषःकाल के प्रकाश से प्रकाशित है। कक्ष की पृथ्वी पर केशरी रंग का बिछावन बिछा है। इसपर स्वर्ण की चौकियाँ रखी है, जिनपर गद्दे बिछे है और तकिये लगे है। चार चाँदी की दीवटो पर सुगन्धित तैल के दीप जल रहे है। राम

खड़े हुए आभूषण पहन रहे है। सीता पास में एक सुवर्ण के थाल में आभूषण लिए हुए खड़ी है। राम लगभग २५ वर्ष के अत्यन्त सुन्दर युवक है। वर्ण साँवला है। कटि से नीचे पीले रंग का रेशमी अधोवस्त्र धारण किये है। कटि के ऊपर का भाग खुला हुआ है। हाथों में सुवर्ण के रत्न-जटित वलय, भुजाओ पर केयूर और अँगुलियों में मुद्रिकाएँ धारण किये है। ललाट पर केशर का तिलक है। सिर के लम्बे केश लहरा रहे है, पर मूछें-दाढ़ी नहीं है। सीता लगभग १८ वर्ष की गौर वर्ण की अत्यन्त सुन्दर युवती है। नीली रेशमी साड़ी पहने है, और उसी रग का वस्त्र वक्षस्थल पर बँधा है। रत्न-जटित आभूषण पहने है। ललाट पर इंगुर की टिकली और माँग में सेंदुर है। लम्बे बालों का जूड़ा पीछे बँधा है, जो साडी के वस्त्र से ढँका है। पैरो में महावर लगा है। दोनों के मुख पर हर्ष-युक्त शाति विराज रही है। सीता के नेत्र लज्जा से कुछ नीचे को झुके हुए है, जो उनकी स्वाभाविक मुद्रा जान पड़ती है।]

राम—(हार पहन चुकने पर कुण्डल पहनते हुए) देखना है, प्रिये, इस भारी उत्तरदायित्व को सँभालने और अपने कर्तव्य को पूर्ण करने मे मै कहाँ तक कृतकृत्य होता हूँ। दायित्व ग्रहण करने के लिए एक पहर ही तो शेष है, मैथिली।

सीता—हाँ, नाथ, केवल एक पहर। सफलता के सम्बन्ध मे प्रश्न ही निरर्थक है, आर्यपुत्र। यदि ससार मे आपको ही अपने कर्तव्य मे सफलता न मिली तो अन्य को मिलना तो असम्भव है।

राम—(किरीट लगाते हुए) परन्तु, वैदेही, किसी कार्य का उत्तर-दायित्व सँभालने के पूर्व वह कार्य जितना सरल जान पडता है उतना, दायित्व ग्रहण करने के पश्चात् नही। महर्षि विश्वामित्र की यज्ञ-रक्षा

के निमित्त जब मै लक्ष्मण-सहित उनके सग गया था, उस समय मुझे वह कार्य जितना सरल भासता था, उतना सरल वह न निकला। फिर किसी कार्य को करने के पश्चात् उसके फल का शुभाशुभ प्रभाव हृदय पर पडे बिना नही रहता। ताडका की स्त्री-हत्या की ग्लानि को, यद्यपि वह पुण्य कार्य के लिए की गयी थी, मै अब तक हृदय से दूर नही कर सका हूँ।

सीता—परन्तु, आर्यपुत्र, प्रजा के पालन और रजन के लिए तो इस प्रकार के न जाने कितने कार्यों को करना पड़ेगा।

राम—(**पीत रेशमी उत्तरीय गले में डालते हुए**) हाँ, प्रिये, तभी तो कहता हूँ कि देखना है इस भारी उत्तरदायित्व को सँभालने और अपने कर्तव्य को पूर्ण करने मे मै कहाँ तक कृतकृत्य होता हूँ। इस सूर्यवश मे महाराज इक्ष्वाकु, भगीरथ, दिलीप, रघु आदि अनेक प्रतापी, वीर, कर्तव्य-परायण और प्रजा-पालक राजा तथा सम्राट् हुए है। इस वश का राज-भार सँभालने के लिए जैसे पुष्ट कन्धो, दीर्घ भुजाओ, दृढ और साथ ही साथ कोमल हृदय एव स्पष्ट तथा विशद् मस्तिष्क की आवश्यकता है, ज्ञात नही, मेरे ये अवयव वैसे है या नही।

सीता—मेरा इस सबध मे कुछ भी कहना पक्षपात ही होगा, नाथ।

राम—(**चौकी पर बैठते हुए**) नही, मैथिली, यह बात नही है। सर्व-साधारण प्रत्येक वस्तु को प्राय तुलनात्मक दृष्टि से देखते है; साधारण वस्तुओ के बीच कुछ भी विशेषता रखनेवाली वस्तु का आदर हो जाता है, पर मेरी परख तो सूर्यवश के इन महा तेजस्वी रत्नो के बीच मे मुझे रखकर की जायगी।

सीता—(**दूसरी चौकी पर बैठकर**) और, नाथ, मुझे विश्वास है कि आप उनमें अद्वितीय निकलेंगे।

राम—इसका क्या प्रमाण है, वैदेही ? सुबाहु और ताडका का मै वध कर सका एव मारीच को मेरा बाण उठाकर कुछ दूर तक ले जा सका, जिससे महर्षि विश्वामित्र का यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ, क्या यही इसके लिए यथेष्ट प्रमाण है ? मै धनुष-भग कर तुम्हारा पाणि-ग्रहण कर सका, क्या इतने से ही यह बात मानी जा सकती है ? ये तो मेरे पाशविक बल के प्रमाण है। इससे मै प्रजा का सुशासन कर सकूँगा यह तो सिद्ध नही होता।

सीता—क्यो, आर्यपुत्र, इतना ही क्यो ? पापिष्ठा अहल्या का आपने उद्धार किया, भगवत्-अवतार परशुराम पर आपने आत्मिक विजय पायी।

राम—इसमे केवल मेरी विशेषता ही नही है, मैथिली, इन बातो के अन्य कारण भी थे।

सीता—और, नाथ, आज सारी प्रजा आपको प्राणो से अधिक चाहती है, क्या आपके बिना किसी गुण के ही ?

राम—इसका कारण मुझसे की जानेवाली भविष्य की आशा ही है। न जाने प्रजा ने मुझसे अगणित आशाएँ क्यो बाँध रखी है।

सीता—इसका कारण आप नही जान सकते, आर्यपुत्र, पर आपके आत्मीय जानते है, आपकी प्रजा, गुरु, माता-पिता, भ्राता जानते है, और मै जानती हूँ, नाथ। निसर्ग ने आपको जैसा हृदय, मस्तिष्क और पराक्रम दिया है वैसा यदि अन्य को मिलता तो वह फूला न समाता, गर्व से उसका मस्तिष्क सातवे लोक को पहुँच जाता, परन्तु आपकी तो दृष्टि तक अपने गुणो की ओर नही जाती। अन्य को अपने राई-समान सुगुण भी पर्वताकार दिखते है, परन्तु आपको तो अपने पर्वताकार

सुगुण राई-तुल्य भी नही दिखते। अपने प्रति यह विराग ही तो इस सुगुण रूपी स्वर्ण-मन्दिर का रत्न-जटित कलश है। लोकोपकार मे आपका सारा समय व्यतीत होता है, आर्यपुत्र। कर्तव्य ही आपके दिवस की चिन्ता और रात्रि का स्वप्न है।

राम—तुम सबो का मुझमे इस प्रकार के गुणो का अवलोकन और इसके आधार पर मुझसे महान् आशाएँ ही तो मुझे अधिक शकित बनाये रहती है। प्रिये, जिससे जितने अधिक ऊँचे उठने की आशा की जाती है, उसका मार्ग उतना ही अधिक कठिन और दुस्तर हो जाता है। जब वह अपने निर्दिष्ट स्थान की ओर दृष्टि फेकता है तब उसकी अत्यधिक उँचाई देख उसे अनेक बार शका हो उठती है कि वह अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच सकेगा या नही।

सीता—यह शका उन्ही के हृदय मे अधिक उठती है जो उस स्थान तक पहुँचने की क्षमता रखते है। समर्थ ही सदा शकित रहता है, असमर्थ को तो कोई भी वस्तु सामर्थ्य के बाहर दृष्टिगोचर नही होती।

राम—पर, मैथिली, आदर्श ऊँचा, बहुत ऊँचा है। प्रजा मे कोई भी मनुष्य आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दृष्टि से दुखी न रहे, अपने कर्तव्य की पूर्ति के लिए राजा को अपने सर्वस्व की आहुति देनी पडे तो भी वह पीछे न हटे, राजा के लिए कही भी, किसी प्रकार की भी, बुरी आलोचना और अपवाद न सुन पडे। वैदेही, यह महान् उच्च आदर्श है।

सीता—जो स्वय जितना उच्च होता है उसका आदर्श भी उतना ही ऊँचा रहता है।

राम—देखना है, प्रिये, कितना कर पाता हूँ। पिताजी आज अभिषेक के उत्तरदायित्व के अनुष्ठान का भी आरम्भ कर देगे। सन्तोष

इतना ही है कि फिर भी पिताजी और गुरुजी की अनुभव-शील सम्मति पथ-प्रदर्शक रहेगी, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न सदृश भ्राता सहायता करेंगे; तीन तीन पूजनीय माताओ का आशीर्वाद और तुम्हारा प्रेम साथ मे होगा। वैदेही, पूज्यपाद दिलीप महाराज को उनकी सन्तान-कामना के अनुष्ठान मे जितनी सहायता महारानी सुदक्षिणा से मिली थी, मुझे तुमसे, मेरी कर्तव्य-पूर्ति मे, उससे कही अधिक मिलनी चाहिए।

[नेपथ्य में वाद्य बजता है।]

राम—(खड़े होकर) यह लो, उष.काल की प्रार्थना का समय भी हो गया।

[सीता भी खड़ी हो जाती है। नेपथ्य में गान होता है।]

कल्याणानां त्वमसि महसां भाजनं विश्वमूर्त।
धुर्यां लक्ष्मीमिह मयि भृशं धेहि देव प्रसीद॥
यद् यद् पापं प्रतिजहि जगन्नाथ नम्रस्य तन्मे।
भद्रं भद्रं वितर भगवन् भूयसे मंगलाय॥

[प्रतिहारी का प्रवेश। प्रतिहारी ऊँचा और मोटा वृद्ध व्यक्ति है। केश श्वेत हो गये है। सिर के बाल लम्बे है, और दाढ़ी लंबी है। शरीर के ऊपर के भाग में कचुक (एक प्रकार का लंबा वस्त्र) और नीचे के भाग में अधोवस्त्र धारण किये है। सिर पर श्वेत पाग है। सुवर्ण के भूषण पहने है। दाहने हाथ में ऊँची सुवर्ण की छड़ी है।]

प्रतिहारी—(सिर झुकाकर अभिवादन कर) श्रीमन्, महामत्री सुमन्त पधारे है। श्रीमान् महाराजाधिराज स्वस्थ नही है, अत आपका स्मरण किया है।

राम—(चौककर) अच्छा! मै अभी उपस्थित होता हूँ।

[प्रतिहारी का अभिवादन कर प्रस्थान ।]

सीता—(घबड़ाकर) शुभ अवसर पर यह अशुभ सवाद !

राम—इस सवाद को सुन, ज्ञात नही, क्यो मेरे हृदय मे अनेक बुरी-बुरी कल्पनाएँ उठती है । (कुछ ठहरकर खड़े होते हुए) अच्छा, प्रिये, मै चलता हूँ ।

सीता—(खड़ी होती हुई) प्राणनाथ, मुझे सारा सवाद किस प्रकार विदित होगा ?

राम—या तो किसी विश्वासपात्र जन के द्वारा सूचना दूँगा अथवा मै ही लौटूँगा या तुम्हे बुलवाऊँगा ।

[राम का प्रस्थान । परदा गिरता है ।]

दूसरा दृश्य

स्थान—अयोध्या का एक मार्ग

समय—प्रात काल

[दूरी पर अनेक खण्डो के भवन दीख पड़ते है । एक ओर से दौडते हुए एक, और दूसरी ओर से आते हुए दो पुरवासियों का प्रवेश । पुरवासी श्वेत अधोवस्त्र और उत्तरीय पहने है । सिर नंगा है, जिसपर बड़े बड़े केश लहरा रहे है । मस्तक पर तिलक लगा है । कानों में स्वर्ण के कुण्डल, गले में हार, भुजाओं पर केयूर, हाथों में वलय और अँगुलियों में मुद्रिकाएँ है ।]

एक—(दूसरी ओर से आनेवाले दोनो से) तुमने सुना, क्या अघटित घटना घटी ?

दूसरा—आज आनन्द के दिन रामाभिषेक के सम्बन्ध मे ही और कोई आनन्ददायक घटना घटित हुई होगी ।

पहला—(लम्बी साँस लेकर) वही होता तो क्या पूछना था, बन्धु, पर दैव बडा दुष्ट है ।

तीसरा—(घबड़ाकर) क्यो, क्यो, क्या हुआ ? राजवश मे तो सब कुशल है ?

पहला—(लम्बी साँस लेकर) नही ।

दूसरा—(घबड़ाकर) नही ! इसका क्या अर्थ ? तुरत कहो, तुरत ।

तीसरा—(घबड़ाये हुए) महाराज तो प्रसन्न है ? रानियाँ तो प्रसन्न है ? जिन अनुपमेय राम और सीता के दर्शन कर हम लोग नित्य कृतार्थ होते है, जो निशिदिन हमारे कल्याण की चिन्ता मे मग्न और हमारे हित के लिए भटकते रहते है, वे तो आनन्द-पूर्वक है न ?

दूसरा—वीरवर लक्ष्मण तो कुशल से है ? पुण्यात्मा भरत और शत्रुघ्न के तो ननिहाल से कोई अशुभ समाचार नही आये ?

पहला—(लम्बी साँस लेकर) अब सब अशुभ ही अशुभ है । न जाने कितनी प्रतीक्षा के पश्चात् जो शुभ घडी आज दृष्टिगोचर होती, वही जब न होगी, तो फिर शुभ क्या है ?

दूसरा—(अत्यन्त घबड़ाकर) पर हुआ क्या ? तुम लम्बी साँसे ले रहे हो, पर बतलाते कुछ नही ।

तीसरा—(**घबड़ाहट के मारे जल्दी-जल्दी**) मेरे प्राण मुँह को आ रहे है। तुरन्त कहो, बन्धु, तुरन्त, शीघ्राति-शीघ्र कहो।

पहला—(**नेत्रो मे आँसू भरकर**) युवराज-पद के स्थान पर महाराज ने ......। (**उसका गला भर आता है।**)

दूसरा—(**टहलते हुए**) हाँ, महाराज ने, क्या? शीघ्र कहो, नही तो हम ही दौड़ते हुए ड्योढी को जाते है।

पहला—(**भर्राये हुए स्वर मे**) नही कहा जाता, बन्धु, नही कहा जाता। क्या कहूँ! हा! सुनने के पूर्व ही प्राण क्यो न निकल गये।

[जिधर से एक पुरवासी आया था उसी ओर से दौड़ते हुए एक का और प्रवेश। इसकी वेश-भूषा भी पहले पुरवासियो की-सी है।]

पहला—(**आगन्तुक से**) क्यो पूछ आये?

आगन्तुक—हाँ, सच है।

दूसरा—क्या, कुछ हमे भी तो बताओ?

तीसरा—(**पहले की ओर संकेत कर**) ये भी नही बता रहे है।

आगन्तुक—क्या बताऊँ, अनर्थ हो गया, घोर अनर्थ। अवध की प्रजा के भाग्य फूट गये। राज्याभिषेक के स्थान पर महाराज ने राम को चौदह वर्ष का वनवास दिया और भरत को राज्य!

दूसरा—क्या कहा? राम को वनवास! (**सिर पकड़कर बैठ जाता है।**)

तीसरा—और भरत को राज्य!

आगन्तुक—(**लम्बी साँस लेकर**) हाँ, बन्धु, यही। (**पहले की ओर**

संकेत कर) जब इन्होने मुझसे यह वृत्त कहा तब मैंने भी इस सवाद पर विश्वास न किया था, मै स्वय ड्योढी पर गया और सुन आया कि यह सत्य है।

दूसरा—कारण क्या? महाराज तो राम से अत्यन्त प्रसन्न थे।

पहला—महाराज का दोष नही है, भरत का षड्यन्त्र सफल हो गया।

आगन्तुक—नही, नही, भरत को क्यो दोष देते हो? उनकी माता के अपराध के कारण उनको दोष देना अन्याय है।

तीसरा—अच्छा, तो कैकेयी महारानी दोषी है?

पहला—कैकेयी का तो नाम है, मेरा तो विश्वास है कि सारी विष-बेलि भरत की बोयी हुई है।

दूसरा—अच्छा तो सारा वृत्त तो कहो कि क्या हुआ?

आगन्तुक—सारे वृत्तान्त के कहने का तो मुझमे भी साहस नही है और न अभी ज्ञात ही है। सक्षेप मे यही है कि कैकेयी महारानी को महाराज ने कभी दो वर देने का वचन दिया था, रात्रि को जब महाराज शयनागार मे गये तब महारानी ने राम को चौदह वर्ष का वनवास और भरत को राज्य देने के दो वर माँगे। महाराज की सत्यवादिता तो विख्यात ही है; महाराज को अपना वचन पूर्ण करना पडा। राम अभी महाराज के निकट गये थे, उन्होने वन जाने की प्रतिज्ञा की है और वे जाने को प्रस्तुत होने के लिए अपने · ··। **(इतना कहते-कहते उसका गला भर आता है, कुछ ठहरकर वह फिर कहता है)** पतिव्रता सीता देवी और भ्रातृवत्सल लक्ष्मण भी उनके साथ जायँगे।

पहला—(**आश्चर्य से**) अच्छा! यह मुझे भी ज्ञात नही था। उन्हें भी वनवास दिया गया है?

आगन्तुक—नही, और राम ने बहुत चाहा कि वे सग न जावें, पर दोनो ने नही माना, अन्त मे राम ने स्वीकृति दे दी। राम माता से भी आज्ञा ले आये है और लक्ष्मण भी।

दूसरा—आह! सीता देवी चौदह वर्ष वन में!

तीसरा—महान् अनर्थ है! (**क्रोध से**) मै भी मानता हूँ कि यह सब भरत, शत्रुघ्न और कैकेयी के षड्यन्त्र से हुआ है, वे दोनो ननिहाल चल दिये और माँ को आगे कर दिया।

दूसरा—यदि यह सत्य हुआ तो हम लोग विप्लव करेंगे।

आगन्तुक—बन्धु, उत्तेजना में मनुष्य सत्य बात का निर्णय कभी नही कर सकता। मुझे विश्वास है कि पुण्यात्मा भरत से यह होना सम्भव नही है, फिर सच बात तो प्रकट होकर ही रहेगी, और हमारे लिए तो राम और भरत दोनो समान है, परन्तु ।

पहला—(**क्रोध से**) कभी नही, राम और भरत कभी समान नही हो सकते।

दूसरा—(**और भी क्रोध से**) असम्भव है।

तीसरा—(**अत्यन्त क्रोध से**) नितान्त।

आगन्तुक—पर इसके निर्णय का तो यह समय नही है। जब भरत सिंहासनासीन होने लगेंगे, उस समय प्रजा अपने कर्तव्य का निर्णय करेगी। मैं तो यह कह रहा था कि यदि कैकेयी भरत को राजा ही बनाना चाहती थी, तो वे बनवाती, पर राम को वनवास क्यो? राम का स्वभाव तो

ऐसा है कि वे भरत को सहर्ष राज्य दे देते। प्रजा से राम का यह वियोग क्यो कराया जा रहा है ?

पहला—(**शोक से**) हॉ, बन्धु, क्या वृद्ध, क्या युवा, क्या बालक, क्या नर, क्या नारी सभी को राम एक-से प्रिय है।

तीसरा—(**शोक से**) इसमे कोई सन्देह नही। जहॉ वे जाते है, घडियो तक नर-नारियॉ उसी मार्ग को देखा करते है, उन्ही की चर्चा होती है। कौन वैसी प्रजा-सेवा करेगा ?

पहला—(**ऑसू भरकर**) ओह ! चौदह वर्ष उनके दर्शन न होगे। महाराज, महारानी कौशल्या और सुमित्रा तथा उर्मिला देवी कैसे जीवित रहेगी ?

दूसरा—पर देखे, वे कैसे जाते है ? सारे अयोध्या-निवासी उनके रथ को रोक लेगे, घोडो को पकड लेगे, रथ के चको को नही छोडेगे, देखे, उनका रथ कैसे चलता है ?

तीसरा—हॉ, हॉ, वे यदि पैरो जाने का उद्योग करेगे तो वह भी न करने देगे; उनके सम्मुख लेट जायॅगे। राम ऐसे निर्दयी नही है कि मनुष्यो को कुचल कर जावे।

पहला—चलो, चलो, सारे पुर मे सूचना करे, सारे पुरवासी ड्योढी को चलेगे।

[चारो का प्रस्थान। परदा उठता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान—अयोध्या मे राजप्रासाद के बाहर का राज-मार्ग

समय—प्रात काल

[सामने दूरी पर अनेक खण्डो का ऊँचा राजप्रासाद दिखता है। मार्ग के दोनो ओर अनेक खण्डो के भवन बने हैं। मार्ग जन-समुदाय से भरा है। वृद्ध, युवा, बालक, स्त्रियां सभी दृष्टिगोचर होते हैं। पुरुष और बालक उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये है। स्त्रियाँ और बालिकाएँ साड़ी पहने और वक्षस्थल पर वस्त्र बाँधे है। सभी आभूषण धारण किये है। किसी के आँसू बह रहे है, कोई इधर-उधर दौड़ रहा है। बड़ा हल्ला हो रहा है। कभी-कभी हल्ला कम होता है और तरह-तरह के शब्द सुनायी देते है।]

एक—राज्याभिषेक के स्थान पर वन-गमन हुआ।

दूसरा—दैवी माया सचमुच बडी अद्‌भुत है।

पहला—हा! आज अवध का राज्य अनाथ हो जायगा।

दूसरा—न जाने, राजा को क्या सूझा है?

एक वृद्धा—फिर हमे उनके मुख न दिखेगे, क्यो?

[कुछ देर तक हल्ले में कुछ सुनायी नही देता, फिर कुछ शान्ति होती है।]

एक—अब उनका जा सकना असम्भव है।

दूसरा—यदि वे चाहे तो उनका रथ या उनके पैर अगणित प्रजा को रौदकर अवश्य जा सकते है।

तीसरा—यह भी सम्भव नही है, जहाँ तक वे जायँगे, हम पीछा करेगे।

एक स्त्री—अरे, स्त्रियाँ तक दौडेगी।

एक बालक—और बालक भी।

[राजप्रासाद के महाद्वार से एक रथ निकलता है। छतरीदार रथ है। रथ में चार घोड़े जुते है। सामने सारथी बैठा है जो श्वेत उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये है तथा सुवर्ण के आभूषण पहने है। रथ पर चमडा मढ़ा है और चमड़े पर सोना-चाँदी लगा है। रथ की छतरी पर रंगीन चित्रित ध्वजा उड़ रही है। फिर हल्ला होता है। रथ पर भूषणो से रहित, वल्कल-वस्त्र पहने राम और लक्ष्मण बैठे है। सीता अपनी साधारण वेश-भूषा में बैठी है और महर्षि वसिष्ठ भी है। लक्ष्मण का स्वरूप राम से मिलता हुआ है, पर वे गौर वर्ण है। वसिष्ठ वृद्ध हैं, फिर भी केशों की श्वेतता के अतिरिक्त वृद्धावस्था का कोई प्रभाव शरीर और मुख पर नही है। उनका शरीर गौर वर्ण का सुडौल है। सिर पर जटा बँधी है और लम्बी श्वेत दाढ़ी है। वस्त्र वल्कल के है। रथ को सारथी धीरे-धीरे आगे बढ़ाता है। कुछ देर पश्चात् सुन पड़ता है।]

वसिष्ठ—(राम से) इस अपार जन-समुदाय के बीच से कैसे निकल सकोगे, राम ?

राम—(लम्बी साँस लेकर) आपके प्रयत्न से, प्रभो। अपने पर प्रजा का यह अत्यधिक प्रेम देख, इनके वियोग से क्या मुझे दु ख न होगा ? परन्तु पूज्यपाद पिताजी की आज्ञा का तो अक्षरश पालन करूँगा, भगवन्।

[जैसे ही रथ आगे बढ़ता है कुछ लोग कहते है।]

एक—अब रथ आगे नही बढ सकता।

दूसरा—असम्भव है।

तीसरा—सर्वथा असम्भव है।

[फिर हल्ला होता है। कुछ देर पश्चात् सुनायी देता है।]

एक—क्या आप इतने जन-समुदाय की इच्छा के विरुद्ध कार्य करेंगे, स्वामिन्?

दूसरा—प्रजा-रजन सूर्य-वशियो का प्रथम कर्तव्य है।

तीसरा—धर्म है, धर्म।

[फिर भी रथ कुछ और आगे बढ़ता है। फिर हल्ला होता है। कई पुरवासी आगे बढ़, घोड़ो की रास और रथ के चक्के पकड़, रथ को रोक लेते हैं। एक अत्यन्त वृद्ध पुरवासी आगे बढ़ता है।]

वृद्ध—(नेत्रों में आँसू भर) कहाँ, कहाँ जाते हो, राम? इन वस्त्रो को पहनकर कहाँ जाते हो? सूर्य-वशी राजाओ और सम्राटो को चौथेपन मे मैंने ये वस्त्र पहने, वन जाते, रानियो को वन मे सग ले जाते, देखा है, पर इस अवस्था मे नही, राम, इस अवस्था में नही।

एक वृद्धा—(आगे बढ़ रोती हुई सीता से) पुत्री, तू कहाँ जायगी? तू वन को जायगी! वृद्ध सास-ससुर को, हम सबको छोड तू वन को जायगी! यह नही होगा, कभी नही होगा। हम अवध-निवासी वृद्धाओ के प्राण रहते कभी नही होगा।

[फिर हल्ला होता है, थोड़ी देर कुछ सुनायी नहीं देता, फिर सुन पड़ता है।]

एक ब्राह्मण—(आगे बढ़ वसिष्ठ से) भगवन्, यह कहाँ की नीति है? कहाँ का धर्म है? आपके कुल-गुरु होते हुए यह अनीति, यह अधर्म!

एक युवक—(आगे बढ) और प्रजा की इस आज्ञा के सम्मुख अकेले

महाराज दशरथ की आज्ञा कौनसी वस्तु है ? **(वसिष्ठ से)** प्रभो, इस सूर्यवंश के राजाओ ने, जो प्रजा को प्रिय रहा हैं, वही किया है। महाराज दशरथ हमारे नरेश है, पूज्य हैं, परन्तु उन्हे यह अधिकार नही कि वे हमारी इच्छा के विरुद्ध इस प्रकार का कार्य करे।

[फिर हल्ला होता है। कुछ देर पश्चात् फिर सुनायी देता है।]

एक स्त्री—जिस वैदेही ने पिता और ससुर के घर मे पृथ्वी पर पैर नही रखा, वह वन की पथरीली, कँकरीली और कॉटो की भूमि मे भटकेगी !

दूसरी स्त्री—वन की शीत, ताप और वर्षा सहन करेगी !

तीसरी स्त्री—सीता देवी के कष्टो की ओर ही देखकर न जाओ, युवराज !

एक बालक—**(आगे बढ़ सीता से)** मै तो राजभवन मे बहुत आता था, आप तो मेरे साथी बालको को और मुझे विविध प्रकार के मिष्ठान्न देती थी, क्या हम बालको को छोडकर आप चली जायँगी ? आप ही **(राम की ओर संकेत कर)** इन्हे रोकिए, देवि।

एक युवक—**(आगे बढ़ लक्ष्मण से)** वीरवर, आपके अग्रज ने आपका कहना कभी नही टाला। आप ही हम लोगो की ओर से इन्हे समझाइए।

दूसरा युवक—**(लक्ष्मण से)** पिता की आज्ञा मानना यदि धर्म मान लिया जाय तो एक ओर पिता की आज्ञा है और दूसरी ओर इस अपार जन-समुदाय का सन्तोष।

एक वृद्ध—नही, नही, इस जन-समुदाय की प्राण-रक्षा। अवध में बिना तुम लोगो के दर्शन के कोई जीवित न बचेगा।

[फिर हल्ला होता है । कुछ देर पश्चात् सुनायी देता है ।]

राम—(दुःखित हो वसिष्ठ से) भगवन्, सचमुच यह तो बडी कठिन समस्या है, आप ही इससे उद्धार कीजिए। इस अपार जन-समुदाय का यह करुण-क्रन्दन तो असह्य है।

[वसिष्ठ बोलने के लिए रथ पर खड़े होते है। उन्हें खड़े देख प्रजा चुप हो जाती है ।]

वसिष्ठ—पुरवासी नर-नारियो, राम के प्रति तुम्हारा यह अगाध प्रेम केवल सराहनीय न होकर अभूतपूर्व है, परन्तु, बन्धुओ, यदि प्रेम मोह मे परिणत हो जावे तो वह दु खप्रद हो जाता है। राम के प्रति तुम्हारा प्रेम सराहनीय है, पर मोह सराहनीय नही है। यदि मोह के वशीभूत होकर तुम कर्तव्य-च्युत हो जाओ, या तुम्हारे कारण राम को कर्तव्य-च्युत होना पडे, तो वह न तुम्हारे लिए सराहनीय बात होगी और न राम के। पिता की आज्ञा मानना राम का धर्म है।

एक व्यक्ति—पर, यह आज्ञा अनुचित है।

बहुत से व्यक्ति—नितान्त अनुचित ।

वसिष्ठ—क्या अनुचित और क्या उचित है, इसकी मीमासा, इस वृहत् जन-समुदाय मे, ऐसे समय होना जब कि किसी की भी बुद्धि ठिकाने नही है, सम्भव नही। विषय क्या है, उसे थोडा सोचो। महाराज दशरथ ने महारानी कैकेयी को दो वर देने का वचन दिया; वे अपने वचन से बद्ध है। महाराज के वचन की सिद्धि राम की कृति पर अवलम्बित है, और राम का पुत्र के नाते कर्तव्य है कि वे अपने पिता के वचन को सत्य कर दे। यह तुम्हारे सहयोग पर निर्भर है, अत इस समय राम का वन जाना और तुम्हारा इनके मार्ग मे आडे न आना ही धर्म है। **(वसिष्ठ बैठ जाते हैं।)**

एक युवक—(आगे बढ़ जोर से) यदि यह मान भी लिया जाय कि इस समय राम का धर्म वन जाना है, तो लक्ष्मण और सीता का तो नहीं है ?

दूसरा युवक—कदापि नहीं।

पहला युवक—वे तो राम के सग जा रहे है।

तीसरा युवक—साथी की दृष्टि से ?

पहला—हाँ, साथी की दृष्टि से। तो बस हम सब भी वन जायँगे। अवध के निवासी वही बसेगे, जहाँ राम होगे।

कुछ व्यक्ति—बस, यही ठीक है। राम अपने धर्म का पालन करे और हम अपने धर्म का करेगे।

[फिर हल्ला होता है।]

पहला युवक—(आगे बढ़ जोर से) अच्छा, बन्धुओ, घोडो को छोड़ दो, रथ चले, हम सब पीछे-पीछे चलेगे।

[लोग घोड़ो और रथ को छोड़ देते है। रथ धीरे-धीरे आगे बढ़ता है। जन-समुदाय कोलाहल करता हुआ पीछे-पीछे चलता है। राम, सीता, लक्ष्मण और वसिष्ठ दुःखित दृष्टि से सबकी ओर देखते है।]

यवनिका–पतन

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—पचवटी

समय—सन्ध्या

[गोदावरी के किनारे राम की पर्णकुटी है । गोदावरी का श्वेत नीर डूबते हुए सूर्य की सुनहरी किरणों में चमक रहा है। चारों ओर सघन वन दृष्टि-गोचर होता है। वृक्षो के ऊपरी भाग भी सूर्य की किरणों से पीले हो रहे है। अनेक प्रकार के पुष्पो के वृक्ष कुटी के चारो ओर लगे है। कुटी के बाहर, चट्टानो पर मृगचर्मों को बिछा, राम, लक्ष्मण और सीता बैठे हुए है। राम और लक्ष्मण की जटाएँ बहुत बढ़ गयी है, जिनका मुकुट के सदृश जूड़ा सामने बँधा है। दोनों के वस्त्र वल्कल के है और सीता के नील रेशमी। सीता आभूषण भी धारण किये है। राम और लक्ष्मण के निकट ही उनके धनुष रखे है, तथा बाणो के तरकस। इनके निकट ही, हाथ में पहनने के, गोह के चमडे के बने हुए, गोधांगुलिस्त्राण भी रखे है।

बीच में एक छोटासा लता-मंडप है। मंडप के चारो ओर पत्रो तथा पुष्पों का बन्दनवार बँधा है। मंडप के बीच अग्निहोत्र की वेदी में से थोड़ा-थोड़ा धूम उठ रहा है। आश्रम के चारो ओर वृक्षो पर तोते आदि पक्षी दिखाई देते है। एक पालतू मृगी सीता के पास बैठी है, जिसका सिर सीता सुहला रही है। तीनो सन्ध्या की प्रार्थना मे गायन गा रहे है।]

रविभा विशते सतां क्रियायै।
सुधया तर्पयते पितृन्सुरांश्च ॥
तमसां निशि मूर्च्छतां निहन्त्रे।
हरचूड़ानिहितात्मने नमस्ते ॥

राम—(गायन पूर्ण होने पर) सन्ध्या की प्रार्थना के सग ही आज वनवास की तेरहवी वर्ष गाँठ का उत्सव भी समाप्त होता है, वैदेही, अब कहो, इस उत्सव के उपलक्ष मे तुम्हे क्या भेट दी जाय ?

सीता—नाथ, इस तेरह वर्षो के आपके सग और इन वनो के नित-नये विहारो की स्मृति क्या छोटी भेट है ? फिर भेट तो आपके चरणो मे आज मुझे अर्पित करनी चाहिए।

राम—तुम तो मुझे सभी भेट कर चुकी हो, प्रिये। क्या और कुछ भेट करने को शेष है ? अयोध्या के राजप्रासाद मे तुम आनन्द-पूर्वक निवास कर सकती थी, या अपने पिता के राजभवन को जा सकती थी, दोनो ही स्थानो पर सभी प्रकार के आहार-विहार थे, परन्तु कहाँ ? तुम तो तेरह वर्षो से, प्रति वर्ष कपकपानेवाली शीत, झुलसानेवाली लू और पचासो जगह टपकनेवाली इस पर्णकुटी मे वृष्टि को सहन कर रही हो। चार पग भी चलने से जो पैर दुखने लगते थे वे पथरीली और काँटोंवाली भूमि मे योजनो चल चुके है। वन की पवन से सारा शरीर रूखा हो गया है और मुख क्या वैसा है, जैसा अयोध्या छोडने के पूर्व था ? क्या कहूँ ?

सीता—परन्तु आपके बिना अयोध्या अथवा मिथिला के वे राज्य-वैभव मुझे क्या सुख देते, आर्यपुत्र ? मै सत्य कहती हूँ, इन तेरह वर्षो का, वन का, यह सुख मै जीवन भर न भूलूँगी।

राम—(लक्ष्मण से) लक्ष्मण, वधू उर्मिला क्या सोचती होगी ? तुम तो हठ कर मेरे सग आ ही गये, पर वह मुझे अवश्य शाप देती होगी। वधू उर्मिला और पूज्यपाद सुमित्रा का जब स्मरण आता है तब मै उद्विग्न हो उठता हूँ।

लक्ष्मण—मुझे विश्वास है, तात, आपके सग मेरे आने से उन्हे दु ख नही, आनन्द, असीम आनन्द होगा।

राम—(लम्बी साँस लेकर) इन तेरह वर्षो के पूर्व का, आज का दिवस फिर दृष्टि के सम्मुख घूम रहा है। पिताजी की वह आतुरता, प्रजा का वह करुण-क्रन्दन ! आह ! यदि दूसरे दिन रात्रि को ही सबके सोते हुए हम लोगो ने रथ न चला दिया होता तो क्या लोग अयोध्या लौटते ? न जाने क्या होता ? उसके पश्चात् भी क्या न हुआ। मेरे वियोग मे पिताजी का स्वर्गारोहण, भरत का नन्दीग्राम मे तप करना। कुछ ही दिन नही हुए, सुना था कि तेरह वर्ष बीत जाने पर भी अब तक अवध मे कोई उत्साह-पूर्ण कार्य नही होता, न जन्म मे उत्सव होता है, न विवाह मे। एक मनुष्य के लिए करोडो का यह क्लेश !

लक्ष्मण—पर किस एक मनुष्य के लिए, आर्य ? उसके लिए जिसने बिना उत्तरदायित्व के ही प्रजा की सेवा मे अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर दिया था, उसके लिए जिसने अपने कर्तव्य के सम्मुख राज-पाट, धन-वैभव, आनन्द-विहार सबको तुच्छ माना, सबको ठुकरा दिया। प्रजा के आप प्राण है, तात, प्रजा आपके बिना निर्जीव है।

सीता—मुझे तो जब आपने चित्रकूट से भरत आदि कुटुम्बीजनो

एव प्रजा को लौटाया था, उस समय की उनकी मुख-मुद्रा विस्मृत नही होती। जान पड़ता था, मानो हमने उनका सर्वस्व हरण कर उन्हे लौटाया हो।

लक्ष्मण—और, आर्य, मुझें वह दृश्य अब तक खटक रहा है जब आपने पूज्यपाद कौशल्या के भी पूर्व कैकेयी के चरणो का स्पर्श किया था।

राम—(**मुस्कराकर**) लक्ष्मण, अनेक बार तुम इस बात को कह चुके हो और मै तुम्हे समझा भी चुका, पर पूज्यपाद कैकेयी के प्रति क्रोध तुम्हारे हृदय से नही जा रहा है। क्या कहूँ? वत्स, इसमे उनका दोष नही था। दैवी प्रेरणाओ से अनेक बार मनुष्य कुछ का कुछ कर डालते है। देखा नही, उन्हे कितना पश्चात्ताप था?

लक्ष्मण—एक वर्ष और शेष है, तात। एक वर्ष मे सबके पश्चात्ताप और दु ख दूर हो जायँगे।

राम—परन्तु न जाने, लक्ष्मण, बार-बार क्यो मेरे हृदय मे उठता है कि अभी और अनर्थ होना है। जब अभिषेक को एक पहर ही था तब चौदह वर्ष के लिए वन को आना पडा, अब बनवास का एक वर्ष शेष है। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है इस एक अक मे कुछ न कुछ विशेषता अवश्य है। मुझे बार-बार भासता है कि यह एक वर्ष उस प्रकार न बीतेगा जैसे ये तेरह वर्ष व्यतीत हुए है।

[दूरी पर सुनहरे चर्म का एक मृग दिखता है।]

सीता—(**मृग देखकर**) नाथ, आप पूछते थे कि वनवास की तेरहवी वर्षगाँठ के उपलक्ष मे मुझे आप क्या देवे? यह लीजिए, दण्डकारण्य के इस विचित्र मृग को देखिए। इसका चर्म मुझे ला दीजिए। आर्यपुत्र, इसके चर्म पर विराजमान आपके दर्शन कर मुझे विशेष आनन्द होगा।

राम—(**मृग को देख, गोधांगुलिस्त्राण हाथ में पहिन, धनुष उठाते और तरकस बाँधते हुए**) हाँ, प्रिये, मृग अवश्य अद्भुत है। मै अभी इसे मार लाता हूँ। (**लक्ष्मण से**) लक्ष्मण, जब से शूर्पनखा के नाक-कान काटे गये है और जनस्थान के खर, दूषण आदि का वध हुआ है तब से राक्षस चारो ओर बहुत घूम रहे है, यहाँ से न हटना और सावधान रहना।

[**राम का प्रस्थान। कुछ देर निस्तब्धता रहती है। अँधेरा होने लगता है।**]

सीता—(**चारों ओर देखकर**) अँधेरा हो चला है; मैंने अच्छा नही किया जो आर्यपुत्र को इस समय उस मृग के पीछे भेजा।

लक्ष्मण—आप चिन्तित न हो, अंब। तात के लिए मै कही और किसी परिस्थिति मे भी भय का कोई कारण नही देखता।

[**कुछ देर निस्तब्धता रहती है। और अँधेरा हो जाता है।**]

सीता—बहुत देर हो गयी, वे अब तक नही लौटे।

लक्ष्मण—आते ही होगे, आप तनिक भी चिन्ता न करे।

[**फिर कुछ देर निस्तब्धता रहती है। कुछ देर पश्चात् नेपथ्य में शब्द होते हैं—'लक्ष्मण! हा! लक्ष्मण!' 'लक्ष्मण! मै मरा, दौड़ो!' 'मुझे बचाओ, बचाओ!'**]

सीता—(**घबड़ाकर**) यह कैसा शब्द! यह कैसा शब्द, लक्ष्मण?

लक्ष्मण—(**प्रथम चौक, फिर शान्त हो**) कोई राक्षसी माया है। आर्ये, तात के लिए कोई भय सम्भव नही।

सीता—(**बहुत ही घबडाकर खड़ी हो**) नही, नही, लक्ष्मण, तुम जाओ, तत्काल जाओ। वह आर्यपुत्र का, ठीक उन्ही का स्वर था। उन-पर कोई भारी आपत्ति है।

लक्ष्मण—मै कहता हूँ उनपर ऐसी आपत्ति आना असम्भव है। देवि, मै आपको अकेला छोडकर कैसे जा सकता हूँ? स्मरण नही है, वे जाते समय मुझे क्या कह गये थे?

सीता—(**उत्तेजित होकर**) मै आज्ञा देती हूँ तुम जाओ, तत्काल जाओ। एक पल का विलम्ब न करो, एक पल का भी नही।

लक्ष्मण—किन्तु........।

सीता—(**अत्यन्त उत्तेजित तथा क्रोधित होकर**) गुरुजनो की आज्ञा में 'किन्तु,' 'परन्तु' की क्या आवश्यकता है? यदि ज्येष्ठ भ्राता की आज्ञा पालन करना तुम अपना कर्तव्य समझते हो तो मेरी आज्ञा मानना भी तो तुम्हारा कर्तव्य है। मै अन्तिम बार तुम्हे आज्ञा देती हूँ कि तुम जाओ, तत्काल जाओ, नही तो मै जाऊँगी।

लक्ष्मण—(**खड़े होकर**) आपकी आज्ञा शिरोधार्य कर मै जाता हूँ, पर आप कुटी के बाहर पैर न रखे।

सीता—हाँ, हाँ, मै कुटी के बाहर न जाऊँगी, तुम तो जाओ, तत्काल जाओ। ओह! तुमने बहुत विलम्ब कर दिया!

[**लक्ष्मण का प्रस्थान। सीता घबडाहट से इधर-उधर टहलती है। परदा गिरता है।**]

दूसरा दृश्य

स्थान—वन का मार्ग

समय—सन्ध्या

[एक ओर से राम और दूसरी ओर से लक्ष्मण का प्रवेश।]

राम—(लक्ष्मण को देख आश्चर्य से) है! तुम वैदेही को अकेली छोडकर!

लक्ष्मण—(सिर नीचा किये) क्या करूँ, आर्य, कई बार मुझे पुकारा गया, आपका-सा स्वर था, फिर भी मुझे सन्देह नही हुआ, पर सीता देवी की ऐसी आज्ञा हुई कि मुझे आपको ढूँढने आना ही पडा।

राम—आह! मै सब समझ गया। वह मृग नही था, राक्षस था। मृग-रूप से आया और मरते समय उसने मेरा-सा स्वर बना तुम्हे पुकारा। जब उसने तुम्हे पुकारा था तभी से मेरे हृदय मे शका हो गयी थी कि मैथिली तुम्हे भेजे बिना न रहेगी, वही हुआ। वैदेही की कुशलता नही है। (लम्बी साँस लेकर) चलो, शीघ्र कुटी चले। मैने कहा ही था कि मेरे हृदय मे शकाएँ उठती है।

[दोनों का शीघ्रता से प्रस्थान। परदा उठता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान—राम की कुटी

समय—सन्ध्या

[कुटी सूनी पडी है। सन्ध्या का बहुत थोड़ा प्रकाश रह गया है। राम और लक्ष्मण का प्रवेश।]

राम—(सूनी कुटी देख, इधर-उधर घूमकर, जोर से) जानकी!

वैदेही! मैथिली! (कोई उत्तर न पा लक्ष्मण से) देखा, लक्ष्मण, देखा, वैदेही नही है।

लक्ष्मण—(सिर नीचा किये हुए दुःखित स्वर से) हॉ, तात, यह मेरे दोष से हुआ।

राम—(लक्ष्मण को दुखी देख) नही, नही, लक्ष्मण, तुम ऐसा क्यो समझ रहे हो? मै तुम्हे दोष नही दे रहा हूँ, यह सब मेरे भाग्य का दोष है।

लक्ष्मण—पर आप धैर्य रखे, आर्य, हम उनकी खोज करेगे। वे मिलेगी, अवश्य मिलेगी, मेरा हृदय कहता है मिलेगी, अन्तरात्मा कहती है मिलेगी। यह भी कोई राक्षसी माया है।

राम—हॉ, खोज अवश्य करेगे, लक्ष्मण, पर यदि कोई वन-पशु ही उसे खा गया होगा, अथवा राक्षस हर ले गया होगा तो? वह जीवित होगी तभी तो मिलेगी न? यदि कोई राक्षस उसे ले गया होगा तो मेरे बिना वह प्राण कब तक रखेगी? यदि उसका पता लग जाय तब तो, उसे ले जानेवाला चाहे कितना ही पराक्रमी क्यो न हो, मै पलो मे उसे परास्त कर सकता हूँ। पापी की शक्ति ही कितनी रहती है? पर पता लगे तब तो, फिर पता लगने तक वह जीवित रहे तब न!

लक्ष्मण—पता भी लगेगा, तात, और वैदेही हमे मिलेगी भी, जीवित मिलेगी। मुझे ऐसा भासता है मानो मेरे कान मे चुपचाप कोई यही कह रहा है।

राम—तुम्हारा ही अनुमान सत्य हो। पर, इस घोर वन मे, जहॉ दिन को ही किसी का पता लगना कठिन है वहॉ, रात्रि के अन्धकार मे तो हाथ को हाथ न सूझेगा; और यदि किसीने उसको हरा है तो प्रात काल तक तो वह न जाने कितनी दूर तक जा चुकेगा।

लक्ष्मण—अभी चन्द्रोदय होगा, आर्य, हम चन्द्र का प्रकाश होते ही उन्हे ढूँढने चलेगे।

राम—**(कुछ ठहरकर)** लक्ष्मण, जानकी कही छिपकर हमसे हँसी तो नही कर रही है? **(जोर से)** मैथिली! मैथिली! वैदेही! वैदेही!

[कोई उत्तर नहीं मिलता।]

लक्ष्मण—नही, तात, यह नही हो सकता। यदि उन्होने हँसी की होती तो क्या आपका यह करुण स्वर सुनकर भी वे चुपचाप छिपी रह सकती थी?

राम—हाँ, वत्स, ठीक कहते हो। मेरा इतना दु ख देखना तो दूर रहा, वह पलमात्र भी मुझे उदास नही देख सकती थी। यदि कभी मै पिता, माता, भरत अथवा अयोध्या-निवासियो का स्मरण कर थोडा भी खिन्न होता तो वह अपनी कोकिल-कण्ठी वाणी द्वारा मेरा हृदय उस ओर से हटाने का उद्योग करती थी। कभी मै उसके इस कौशल को समझ जाता और हँस देता तो लज्जा से वह सिर झुका लेती, उसका उस समय के, ज्योत्स्ना पड़ते हुए कमल के सदृश अवनत, मुख का मुझे इस समय जितना स्मरण आ रहा है उतना कभी नही आया, लक्ष्मण। मैने तो उसे विदेह महाराज तक का स्मरण करते नही देखा। मै यदि उसे उनका स्मरण दिलवाता तो वह इस भय से, कि कही उसके मुख पर कोई खिन्नता न दिख जावे और उससे मुझे क्लेश न पहुँचे, उस बात को ही टाल देती, उस समय के, सरला मृगी के-से उसके नेत्र मुझे इस समय जितने स्मरण आते है उतने कभी भी नही आये, वत्स। मुझे वन मे कभी कष्ट न पहुँचे इसकी उसे कितनी चिन्ता थी? मेरे नित्य कर्मो की व्यवस्था के लिए वह उष काल मे उठती और पहर रात गये सोती थी। मेरे भोजन का

उसे कितना ध्यान रहता था। मै ही उसके लिए सर्वस्व था। उसके प्रेम, उसके वात्सल्य, उसके सुख, उसके आनद का मै ही आश्रय था। तुम ठीक कहते हो, क्या वह मुझे कभी दुखी देख सकती है? तभी कहता हूँ, लक्ष्मण, वह मेरे बिना कैसे जीवित रहेगी?

लक्ष्मण—मनुष्य सब कुछ सहन कर लेता है, तात। जब तक कोई दु ख नही पडता, मनुष्य सोचता है, वह कैसे सहन होगा, पर जब सहने का समय आता है तब उसे सह सकने की शक्ति मिल जाती है। आपके दर्शन की आशा पर ही वे सब कुछ सहन कर लेगी।

राम—हाँ, ठीक कहते हो, वत्स, मै ही उससे कहता था कि यदि मै वन को अकेला आ जाता तो उसका वियोग मै कदाचित् ही सहन कर सकता। पर देखो, आज वह कहाॅ है यह भी ज्ञात न होने पर मै प्राण धारण किये हूँ। **(चन्द्रोदय होता हुआ देखकर)** यह लो, यह लो, लक्ष्मण, चन्द्रोदय हो रहा है। **(कुटी को देख)** देखो तो, वत्स, यह कुटी कैसी शून्य दिखती है। इसपर छाये हुए पत्रो को तो देखो। इन्हे, तुमने और जानकी ने मिलकर, छाया था। **(चाँदनी में चमकते हुए उनके किनारों को देखकर)** वैदेही के वियोग से इनके नेत्रो मे आँसू भर आये है? **(ऑगन के पाटल के पुष्पों और लतामंडप की चमेली पर पड़ी हुई ओस को चाॅदनी में चमकती हुई देख)** देखो, देखो, लक्ष्मण, इन पुष्पो के नेत्रो मे भी ऑसू भर आये है। **(गोदावरी को देख)** यह देखो, अपनी लहरो द्वारा गोदावरी किस प्रकार रुदन कर रही है, यह जानती है कि अब उष काल मे मैथिली इसमे स्नान न करेगी। **(कुछ ठहरकर)** उसके कोई पालतू पक्षी भी नही बोलते, सब शोक से मौन हो गये है। कहाॅ है उसकी परिपालित हरिणी? जानकी मेरे लिए इस समय मरुस्थल का कुसुम, सूखे नद का नीर और सर्प की खोयी हुई मणि के समान हो गयी है। क्यो, वत्स, कभी मिलेगी या नही? सूर्योदय होते ही पद्म का दु ख दूर हो जायगा, क्योकि उसे रवि की किरण

मिल जायगी, कोक का क्लेश चला जायगा, क्योंकि उसे कोकी मिल जायगी। देखना है, मेरे कष्ट का क्यों होता है। आह! अब नही, लक्ष्मण, अब नही, यहाँ अब एक क्षण भी रहना असम्भव है।

लक्ष्मण—हाँ, आर्य, चलिए, हम उन्हे ढूँढेगे। मुझे विश्वास है कि वे मिलेगी, अवश्य मिलेगी।

[दोनो का प्रस्थान। परदा गिरता है।]

चौथा दृश्य

स्थान—किष्किन्धा का एक मार्ग

समय—सन्ध्या

[एक-एक खण्ड के साधारण गृह है। सकरा-सा मार्ग है। दोनो ओर से दो वानरो का प्रवेश। इनका सारा शरीर मनुष्यों के सदृश है, मुँह कुछ बन्दर से मिलता है। सिर और आँखो के बीच में बहुत थोड़ा अन्तर है, अर्थात् सकरा ललाट है। आँखें गोल और नाक चपटी है। गालों की हड्डियाँ उठी हुई और जबड़े की हड्डियाँ चौडी है। रग कुछ लाल है। कपड़े उस समय के मनुष्यों के सदृश, अर्थात् अधोवस्त्र और उत्तरीय, धारण किये है।]

एक वानर—कहो, बन्धु, सुना? आज मृग सिंह से, मूषक बिलाव से, सर्प मयूर से, कपोत बाज से और मत्स्य ग्राह से युद्ध करने आ रहे है।

दूसरा वानर—यही न कि सुग्रीव बालि से युद्ध करने जा रहे है?

पहला—हाँ, पर, क्या यह युद्ध जैसा मैंने कहा वैसा ही नही है!

दूसरा—वैसा तो नही कहा जा सकता, पर हॉ, गज सिह से, बिलाव श्वान से, सर्प नकुल से, मुर्ग बाज से युद्ध करने जा रहे है यह कह सकते हो, ग्राह से इस प्रकार का युद्ध किससे हो सकता है सो मुझे नही सूझता।

पहला—ऐसा सही। पर गज को सिंह, बिलाव को श्वान, सर्प को नकुल और मुर्ग को बाज भी सदा पछाड ही देते है।

दूसरा—प्राय, पर सदा यह नही होता। गज की पीठ पर यदि व्याघ्र हो, या ऐसे ही दूसरे जीव सिखाये हुए हो, तो कभी-कभी विपरीत फल भी हो जाता है।

पहला—तो क्या कोई ऐसी बात है ?

दूसरा—अवश्य। नही तो तुम समझते हो कि सुग्रीव बालि को इस प्रकार युद्ध के लिए ललकार सकते थे ?

पहला—**(उत्सुकता से)** क्या, बन्धु, वह क्या है ? मुझे ज्ञात नही।

दूसरा—**(कुछ धीरे से)** देखो, अपने तक ही रखना।

पहला—मै किसीसे क्यो कहने लगा ? मै तो चाहता ही हूँ कि क्रूर बालि के राज्य का जितने शीघ्र अन्त हो, उतना ही अच्छा है।

दूसरा—**(और धीरे)** सुग्रीव की एक बडे पराक्रमी मनुष्य से मित्रता हुई है।

पहला—किससे ?

दूसरा—उत्तर मे अवध एक राज्य है। वहॉ के राजकुमार राम को उनके पिता ने चौदह वर्ष का वनवास दिया है।

पहला—**(जल्दी से)** यह तो मै जानता हूँ, पर उनसे सुग्रीव का सम्बन्ध कैसे हुआ ?

दूसरा—वही तो कहता हूँ, सुनो न। वे अपने भाई लक्ष्मण और पत्नी सीता के साथ पचवटी मे रहते थे। वहाँ से उनकी पत्नी को कोई हरण कर ले गया है। वे उसे ढूँढते-ढूँढते ऋष्यमूक पर्वत के नीचे पहुँचे। वहाँ सुग्रीव ने उन्हे देखा और हनुमान को भेज अपने निकट बुलवाया। सुग्रीव ने सीता के खोजने, और यदि उनका पता लग गया तो जिसने उनका हरण किया है उससे अपनी वानर और भालु-सेना सहित युद्ध कर राम को पुन प्राप्त करा देने, का वचन दिया है और राम ने सुग्रीव को बालि का वध कर उसके कष्ट-निवारण का ।

पहला—यह सब तुम्हे कैसे ज्ञात हुआ ?

दूसरा—मै उस दिन ऋष्यमूक को गया था।

पहला—पर बालि से तो सुग्रीव युद्ध करेगे, रामचन्द्र उन्हे युद्ध मे कैसे सहायता करेगे ?

दूसरा—यह भी बताता हूँ। जब सुग्रीव बालि से युद्ध करेगे तब राम छिपे हुए बैठे रहेगे और बालि को एक ही बाण मे समाप्त कर देगे। वे बडे पराक्रमी है, उन्होने एक ही बाण से सात ताल वृक्षो को वेध दिया था।

पहला—पर यह तो अधर्म होगा, राम तो बडे धर्मात्मा सुने गये है।

दूसरा—क्या किया जाय, कोई उपाय नही है। सुग्रीव ने जब उन्हे बालि के अत्याचारो का वर्णन सुनाया और बतलाया कि उसकी पत्नी को बालि ने किस प्रकार हरा है, उसकी सम्पत्ति को लेकर उसे राज्य से किस प्रकार निकाल दिया है, तथा वह किस प्रकार मारे-मारे घूमने के पश्चात् अन्त में इस पर्वत पर, यह देख कि बालि शाप के कारण वहाँ नही आ सकता, किस प्रकार कष्ट से अपने दिन व्यतीत कर रहा है, तब राम ने बालि को मारने की प्रतिज्ञा कर ली। उसके पश्चात् उन्हे विदित हुआ कि बालि को वर प्राप्त है कि जो उसके सम्मुख युद्ध करने जाता है उसका आधा बल

बालि को मिल जाता है। तथापि अब तो बालि को किसी प्रकार मारना ही होगा। (कुछ रुककर) फिर राम को यह भी ज्ञात हुआ है कि बालि अपनी प्रजा पर भी बडी क्रूरता से राज्य करता है।

पहला—तो अब बालि गया, पर सुग्रीव अपनी स्वाभाविक अत्यधिक दयालुता के कारण राज-काज चला सकेंगे ?

दूसरा—आदर्श राज्य तो तभी था जब इन दोनो भ्राताओ मे परस्पर स्नेह था, एक की वीरता और दूसरे की दया से प्रजा महान् सुख भोग रही थी, पर वह तो बालि ने ही निर्दोष सुग्रीव को कष्ट दे-देकर असम्भव कर दिया।

पहला—(कुछ ठहरकर) तुम कहाँ जा रहे थे ?

दूसरा—उसी युद्ध को देखने।

पहला—मै भी वही जा रहा था।

दूसरा—तो चलो, चले।

[दोनो का प्रस्थान। परदा उठता है।]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—एक वन

समय—सन्ध्या

[घना जंगल है, जो डूबते हुए सूर्य की किरणो से रँग रहा है। एक वृक्ष की ओट में खड़े हुए राम और लक्ष्मण दूर पर कुछ देख रहे हैं। राम के धनुष पर बाण चढा हुआ है।]

राम—वह देखो, वह देखो, लक्ष्मण, इस समय सुग्रीव बडी वीरता दिखा रहे हैं। उनके मल्ल-युद्ध के प्रकर्षण, आकर्षण, विकर्षण और अनुकर्षण कौशल देखने ही योग्य हैं।

लक्ष्मण—यह प्रथम उत्साह की वीरता है, तात, वे कही बालि के सामने ठहर सकते हैं।

[कुछ देर तक दोनो चुप रहते हैं।]

राम—हॉ, हॉ, ठीक कहते हो, यह देखो उन्हे बालि ने पटक दिया। अब मेरा बाण ही उनकी रक्षा कर सकता है, अन्य कुछ नही।

लक्ष्मण—तो चलाइए बाण, आर्य, विलब क्यो?

राम—पर लक्ष्मण, ताडका को मारते समय जैसे भाव उठे थे आज फिर वैसे ही मेरे हृदय मे उठ रहे हैं। वह स्त्री-हत्या थी, यह युद्ध मे अधर्म है।

लक्ष्मण—पर, इससे बडे अधर्मो का नाश करना और मित्र के प्रति मित्र के कर्तव्य की पूर्ति है।

राम—**(बाण सँभालकर, पर फिर हाथ ढीलाकर)** नही, नही, लक्ष्मण, इस प्रकार छिपकर मुझसे कोई न मारा जायगा। बिना यह अधर्म किये यदि जानकी की खोज नही हो सकती, यदि उसकी प्राप्ति नही हो सकती, तो न हो, पर युद्ध मे यह अधर्म करना मेरे लिए सम्भव नही है।

लक्ष्मण—**(जल्दी से)** इस समय यह सोचने का समय नही है, तात, और न सीता देवी की खोज एव उनकी प्राप्ति का ही प्रश्न है, अब यह प्रश्न है जिसे आपने मित्र बनाया है, उसकी प्राण-रक्षा का। शीघ्रता कीजिए, शीघ्रता कीजिए, नही तो वह बालि सुग्रीव के प्राण ही ले लेगा।

यह मित्र के प्रति विश्वासघात होगा, धर्मात्मा के प्राण अधर्मी के लिए जायँगे; रघुवशियो से ऐसा विश्वासघात कभी नही हुआ।

राम—(**घबड़ाकर**) पर, यह तो एक ओर कूप और दूसरी ओर खाई है, वत्स। जिस समय यह प्रतिज्ञा हुई थी उस समय ये भाव इतने उत्कट रूप से मेरे हृदय मे नही उठे थे।

लक्ष्मण—(**बहुत जल्दी**) पर, आपके इस विचार ही विचार मे उसके प्राण जा रहे है, आर्य। आपने अग्नि को साक्षी देकर मित्रता की है, प्रतिज्ञा की है। चलाइए, चलाइए वाण, तात, नही तो मुझे ही आज्ञा दीजिए मै ही बालि का वध कर दूँ। (**धनुष पर बाण चढ़ाते है।**)

राम—नही, नही, यह कैसे हो सकता है कि मै अपना कर्तव्य न कर पाप तुमपर डालूँ। (**कुछ ठहरकर, उस ओर देखते हुए**) सचमुच ही अब तो उसके प्राण कण्ठगत ही है। अच्छी बात हे, लक्ष्मण, यही हो, अपने कर्तव्य की ओर इतना लक्ष्य रखते हुए भी यदि राम के हाथ से पाप ही होना है तो वही हो, लक्ष्मण, वही हो। (**बाण छोडते है।**)

यवनिका-पतन

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—लका मे अशोक-वाटिका

समय—सन्ध्या

[सुन्दर वाटिका है। अशोक के वृक्ष अधिक दिखायी देते है। वाटिका के बाहर, दूरी पर लका के अनेक खण्डों के विशाल भवनो के ऊपरी खण्ड दिखायी देते है। भवन पीत रग के होने के कारण सुवर्ण के-से दिखते है। डूबते हुए सूर्य के पीले प्रकाश से इनकी दीप्ति और बढ़ गयी है। एक अशोक वृक्ष के नीचे, पृथ्वी पर शोक से ग्रसित सीता बैठी है। चूड़ियो को छोड़ और कोई भूषण सीता के शरीर पर नही है। शरीर क्षीण और मलीन हो गया है। सीता धीरे-धीरे गा रही है।]

कबहूँ हा ! राघव आवहिंगे ?
मेरे नयन-चकोर-प्रीतिबस राकाससि मुख दिखरावहिंगे ॥
मधुप मराल मोर चातक ह्वै लोचन बहु प्रकार धावहिंगे।
अंग-अंग छबि भिन्न-भिन्न सुख निरखि-निरखि तहँ-तहँ छावहिंगे ॥

बिरह-अगिनि जरि रही लता ज्यो कृपा-दृष्टि-जल पलुहावहिंगे ।
निज-वियोग-दुख जानि दयानिधि मधुर बचन कहि समुझावहिंगे ॥

[सरमा का प्रवेश ।]

[सरमा की अवस्था सीता से चार-पॉच वर्ष अधिक है। वर्ण साँवला है, पर मुख ओर शरीर सुन्दर है। वस्त्र सीता के-से है। आभूषण भी पहने है।]

सरमा—'आवहिंगे', नही सखि, आ गये। अभी-अभी मै देखकर आ रही हूँ। रघुनाथजी अनुज सहित समुद्र के इस पार उतर आये। नौकाओ द्वारा आने के लिए नौकाएँ बनानी पडती, उनके बनाने मे बहुत विलम्ब होता, अत सेतु बाँधकर आ गये, सखि।

सीता—(प्रसन्न होकर उठते हुए) ये सब बाते तुम मुझे धैर्य बँधाने को कहती हो सरमा, या ये सब सच्चे सवाद है ?

सरमा—सच्चे, सर्वथा सच्चे, सखि। इस उद्यान का कोट इतना ऊँचा है कि यहॉ से समुद्र नही दिख सकता, अन्यथा मैने तुम्हे स्वय दिखा दिया होता कि समुद्र पर कैसा सेतु बँधा है और बिना नौकाओ की सहायता के ही किस प्रकार उनकी वानर-भालु-सेना इस पार आ रही है। रघुनाथजी और सौमित्र के सग वानर और भालुओ की आधी सेना तो इस ओर आ ही गयी और शेष आधी भी आज रात्रि तक आ जानेवाली है।

सीता—पर, सरमा, समुद्र पर सेतु बँधते आज तक नही सुना !

[दोनो बैठ जाती है।]

सरमा—इसमे तो आश्चर्य की बात नही है। जिस स्थान पर सेतु बॉधा गया है वहॉ समुद्र गहरा नही है। वहॉ की पथरीली भूमि इतनी ऊँची उठी

हुई है कि सहज मे ही सेतु बँध गया। उसी ओर से तो हनुमान भी कही तैरते और कही चट्टानो पर विश्राम करते हुए आये थे।

सीता—(**आँसू भरकर**) तब तो आर्यपुत्र के दर्शन कदाचित् इस जीवन मे सम्भव हो जायँगे, सखि।

सरमा—अब इसमे कोई सन्देह नही है।

सीता—(**कुछ ठहरकर**) युद्ध भी अनिवार्य है, क्यो? राक्षसराज रावण, अगणित राक्षस और इस सोने की लका के नाश का कारण मै ही होऊँगी, सरमा?

सरमा—तुम काहे को होगी, सखि? राक्षसराज का पाप इसका कारण होगा।

सीता—बिना युद्ध के वे मुझे आर्यपुत्र को न सौपेगे?

सरमा—उनके भ्राता ने उन्हे समझाया तो लात खायी और अन्त में उन्हे रघुनाथजी के पास जाना पडा, महारानी मन्दोदरी ने उन्हे समझाया सो महारानी को झिडकी मिली। जब नाश का समय उपस्थित होता है तब बुद्धि ठिकाने पर नही रहती।

सीता—सचमुच मै बडी मन्दभागिनी हूँ। विवाह के समय कठिनाई से पिता की प्रतिज्ञा रही, ससुर के घर मे पैर पडते ही पति को वनवास हुआ, ससुर की मृत्यु हुई, एव सासुओ को वैधव्य, वन मे पति के सग आयी तो वे भी सुखपूर्वक न रह सके तथा यह विग्रह खडा हुआ और लका मे पैर पडते ही लका जली तथा राक्षस-कुल के नाश की सम्भावना दिख रही है।

सरमा—इसमे तुम्हारा क्या दोष है, देवि? तुम्हारे सुख के लिए,

तुम्हारे उद्योग से, यह सब होता तो तुम दोषी थी। तुम तो नारी-कुल की शोभा और पातिव्रत की मूर्ति हो। रक्षोराज रावण से कौन स्त्री अपना सतीत्व बचा सकी है? जिस-जिस पर उसने दृष्टि डाली—किसीने वैभव के लोभ और किसीने प्राणो के भय से अपना आत्म-समर्पण किया। तुम्ही हो, मैथिली, कि तुमने उसकी ओर ऑख उठाकर देखा तक नही, इस स्वर्ग-तुल्य वैभव और इस कुन्दन से अपने शरीर को तुच्छ समझा, वह भी उस समय, वैदेही, जब रघुनाथजी के लका मे आ सकने की कोई सम्भावना न थी, इस दुख-समुद्र का कोई पार दृष्टिगोचर न होता था।

सीता—कोई नारी कैसे इस प्रकार आत्म-समर्पण कर सकती है, यह मेरी तो समझ मे ही नही आता, सरमा। मुझे तो अपने पर उलटा इस बात का आश्चर्य हो रहा है कि बिना आर्यपुत्र के अबतक मै प्राण कैसे रख सकी! कदाचित् उन्हीका स्मरण मुझे जीवित रखे हुए है, वे विस्मृत हो जावे तो कदाचित् यह शरीर क्षणमात्र भी नही रह सकता।

सरमा—किस-किस नारी के प्राण इस प्रकार केवल पति-दर्शन की अभिलाषा पर अवलम्बित रहते है!

सीता—न जाने कैसे आरम्भ से ही मुझे यह आशा रही कि आर्य-पुत्र मुझे मिलेगे। निराशा का कुहरा बार-बार हृदय पर छा जाता है, पर यह आशारूपी सूर्य इतना प्रखर है कि उस कुहरे को बहुत देर नही ठहरने देता। आर्यपुत्र, आर्यपुत्र का क्या-क्या वृत्त कहूँ, सरमा? वह रूप, वह हृदय, वे चरित्र! आह! मिथिलापुरी की पुष्पवाटिका मे सर्व-प्रथम उनके दर्शन हुए थे, फिर धनुषयज्ञ के समय धनुषभग के अवसर पर; इसके पश्चात विवाह मे और परशुराम के पराभव के समय और फिर तो गत ग्यारह मास के पूर्व नित्य ही। उष काल से शयन-पर्यन्त उनकी कैसी दिनचर्या है! आठो पहर और चौसठो घडी कैसे भाव उनके हृदय मे उठते है! न उन्हे

राज्याभिषेक का हर्ष था और न वनगमन का दु ख। हाँ, दूसरो के दुख से वे अवश्य विचलित हो जाते है। मेरी जिन कैकेयी सास ने उन्हे वनवास दिलाया उनके पश्चात्ताप तक ने जब आर्यपुत्र के कोमल हृदय पर ठेस पहुँचायी तब दूसरो के दु खो से उनके हृदय की क्या दशा होती होगी इसकी तो तुम भी कल्पना कर सकती हो, सखि। उनके अयोध्या के और इन तेरह वर्ष के वन के सारे चरित्रो का मै क्या-क्या वर्णन करूँ, कहाँ तक करूँ, सरमा? अवतक न जाने तुम्हारे सम्मुख कितना वर्णन किया है। एक-एक चरित्र को वर्षो तक मै नये-नये राग और नवीन-नवीन भावो मे गान कर सकती हूँ। प्रात काल से ले दूसरे प्रात काल तक हृदय यही करता है। हृदय के इसी गान से जीवित हूँ, इसीसे, सखि।

सरमा—तुम धन्य हो, जानकी, धन्य, जिसे ऐसे पति प्राप्त हुए और धन्य है वे रघुनाथजी जिन्हे ऐसी पत्नी मिली। धन्य है तुम्हारा यह हृदय जिसमे पति के प्रति ऐसी श्रद्धा, ऐसी भक्ति और ऐसा अनन्य प्रेम है।

सीता—मै उनके योग्य हूँ, सरमा? नही, मै तो अपने को ऐसा नही समझती, वे अवश्य कहा करते है कि मै उत्तम हूँ, सर्वोत्तम हूँ, मेरा हृदय उच्च है, सर्वोच्च है। रही उनके प्रति मेरी श्रद्धा, भक्ति और प्रेम, सो यह तो अवश्य है। मैंने आजतक पिता-तुल्य पुरुषो और बालको के अतिरिक्त समवयस्क किसी अन्य पुरुष का पूर्णरूप से मुख भी नही देखा, सखि। मनसा, वाचा और कर्मणा वे ही मेरे सर्वस्व है। उन्हीको मैं अपना धर्म, कर्म, तप, व्रत और ज्ञान मानती हूँ और मै ही क्यो, सरमा, क्या वे मुझपर कम प्रेम करते है? जबतक मै अयोध्या मे रही, या, गत तेरह वर्षो तक वन मे उनके साथ रही, उन्होने मुझे सदा अपने हृदय और नेत्रो पर प्रतिष्ठित रखा। उनके सग के दिन! आह! उनके सग वन मे भी बारह वर्ष पल के सदृश निकल गये और ये वियोग के एक-एक मुहूर्त्त, एक-एक कला, एक-एक काष्ठा, एक-एक त्रुटि और एक-एक लव क्षण भी एक-एक युग

के समान जा रहे है। ज्ञात नही, मेरे बिना वन मे उनकी क्या दशा होगी ? सन्तोष इतना ही है कि मेरा देवर उनके सग है। सरमा, प्यारी सरमा, तुम्हे आशा तो है न कि कभी मै आर्यपुत्र के दर्शन करूँगी ?

[सरमा के गले से लिपट, सीता फूट-फूटकर रोने लगती है। परदा गिरता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान—लकापुरी का एक मार्ग

समय—सन्ध्या

[दूरी पर अनेक खण्डो के पीत रंग के गृह है। मार्ग साधारण रूप से चौड़ा है। दो राक्षस-सैनिको का प्रवेश। दोनो मनुष्यों के समान ही है, पर वर्ण साँवला है। शरीर पर लोहे के कवच और सिर पर शिरस्त्राण धारण किये है, आयुधो से भी सुसज्जित है।]

एक राक्षस—भयकर योद्धा है, बन्धु, भयकर योद्धा! दस दिनो के युद्ध मे ही सारे राक्षस खेत रह गये। महावीर सुबाहु, शूर शिरोमणि कुभकर्ण और वीरता का प्रत्यक्षरूप इन्द्रजीत सभी का सहार हो गया। अब मुट्ठी भर सैनिको के सग स्वय रक्षोराज युद्ध करने निकले है। मुझे तो उनका निधन भी निश्चित दिखता है।

दूसरा राक्षस—इसमे सदेह नही। जब राम और लक्ष्मण के धनुष से बाण चलते है, चाहे वे दूर से चलाये जानेवाले बडे बाण हो अथवा निकट से चलाये जानेवाले एक बीते लबे, तब कब धनुष नवाया गया,

कब ज्या चढायी गयी ओर कब बाण छूटे, इसका पता ही नही लगता, बाण चढाते हुए उनके हाथ कभी कन्धे से छूटते हुए नही दिखते। इसी प्रकार जब उनकी सेना, 'अय कणप' यन्त्र से लोहे के गोले और चक्राश्म और भुशुण्डी यन्त्रो से पाषाण-खण्ड हमारी सेना पर चलाती है तब जान पडता है मानो हमारी सेना पर लोहे के गोलो और पाषाण की, आकाश से, वृष्टि हो रही है।

पहला—यह रक्षोराज के पाप ने राक्षस-कुल का नाश कराया है, कदाचित् लका मे एक राक्षस भी न बचेगा।

दूसरा—वानरो और भालुओ का उतना सहार नही हुआ जितना राक्षसो का हुआ है।

पहला—क्यो होवे? हमारी सेना का हृदय युद्ध मे नही है। क्या हम हृदय से इस युद्ध को चाहते है? हमारी अन्तरात्मा कहती है कि हमारा पक्ष अन्यायपूर्ण है। मैने तो यहाँ तक सुना है कि कुभकर्ण तक ने हृदय से युद्ध नही किया, वरन् उन्हे राम से उल्टी सहानुभूति थी।

दूसरा—हाँ, बन्धु, जब कोई कार्य इच्छा के विरुद्ध करना पडता है तब यही दशा होती है। तभी तो अन्याय की हार और न्याय की जीत होती है। पर, फिर भी युद्ध करना होगा, न करने पर भी ती मारे जायँगे।

पहला—यही भाव तो ससार मे इतना रक्त-पात करा रहा है। यदि सैनिक मरने का भय छोड, अन्यायपूर्ण युद्ध मे भाग न लेने का निश्चय कर ले तो ससार का रक्त-पात ही बन्द हो जाय। युद्ध मे मरते ह, पर सच्चे सिद्धान्त के लिए मरने से डरते है। तभी तो मै तुमसे सदा कहता हूँ कि युद्ध मे सैनिक बहुधा भय से लडते है, वीरता से नही।

[एक राक्षस-सैनिक का प्रवेश। वह भी इन्हीं दोनों के समान है।]

आगन्तुक—अरे, अरे! तुम युद्ध छोडकर यहाँ क्या कर रहे हो? आज का युद्ध तो अभी समाप्त हुआ है।

पहला—हम कोई एक घडी पहले हटे होगे। दिन भर मार-मार, काट-काट के मारे आज तो ऐसे थक गये थे कि क्षण-भर भी और ठहरने का साहस न हुआ।

दूसरा—और हम दो जन वहाँ रहते भी तो घडी भर मे राम-सेना को परास्त कर डालते क्या?

आगन्तुक—पर, बन्धुओ, आज तो बडी भारी सफलता मिली है।

पहला—कौनसी?

आगन्तुक—रक्षोराज ने लक्ष्मण को शक्ति से आहत किया है।

दूसरा—अच्छा, तो वे इस लोक मे नही है?

पहला—**(खेद से)** मुझे तो इस सवाद से उल्टा दु ख होता है।

आगन्तुक—**(आश्चर्य से)** शत्रु-पक्ष से इतनी सहानुभूति!

पहला—न्याय से सभी की आन्तरिक सहानुभूति रहती है। अच्छा, इसे जाने दो, यह कहो, लक्ष्मण जीवित है या नही?

आगन्तुक—हाँ, अभी तो जीवित है, परन्तु मूर्च्छित हैं। जीवित भी बहुत थोडे समय के लिए समझो।

पहला—यह तुम्हे कैसे विदित हुआ?

आगन्तुक—हमारे यहाँ का वैद्य उन्हें देखने गया था, उसीका यह मत था।

दूसरा—हमारा वैद्य उन्हे देखने कैसे गया!

आगन्तुक—उनके बुलाने से।

पहला—तुम्ही देख लो, सभीकी उनके साथ कितनी सहानुभूति है।

पहला—अच्छा, वैद्य ने क्या कहा, यह थोडा विस्तार से कहो।

आगन्तुक—उसने कहा, सजीविनी बूटी के अतिरिक्त लक्ष्मण को और कोई वस्तु जीवित नही रख सकती और यदि प्रात काल तक वह न आयी तो उनका मरण निश्चित है। पर, वह बूटी बहुत दूर है और प्रात काल तक उसका आना असम्भव है।

पहला—मुझे निश्चय है कि वह प्रात काल के पूर्व आ जायगी।

आगन्तुक—यह कैसे ?

पहला—उनके अद्‌भुत-अद्‌भुत साथी है। स्मरण नही है, समुद्र के उथले स्थल का पता लगा समुद्र पार कर हनुमान कैसे आ गया था। कैसे एक हनुमान ने सारी लका को जला डाला। नौकाओ द्वारा आने मे नौकाएँ बनानी पडती और नौकाओ के बनने मे विलब लगता, अत नल-नील ने उसी उथले स्थल पर कैसे समुद्र का सेतु बाँध दिया कि बिना नौकाओ की सहायता के ही सारी वानर-भालु-सेना इस पार आ गयी। अगद जब दूत बनकर हमारी राज-सभा मे आया था और उसने चुनौती दी थी कि मै उसे पराक्रमी समझूँगा जो मेरा पैर हटा देगा, तब इतनी बडी सभा मे एक भी ऐसा वीर न निकला जो उसका पैर सूत बराबर भी हटा सकता। फिर हमारे प्रत्येक महारथी का कैसी शीघ्रता से नाश हुआ। निर्बल वानर और भालु भी पराक्रमी राक्षसो को मार रहे है!

दूसरा—और, बन्धु, सबसे बडी बात तो यह है कि न्याय-पक्ष उनका है, न्याय-पक्ष के भगवान् सहायक होते है।

पहला—अच्छा, चलो अभी तो लक्ष्मण का और कुछ पता लगावे।

[तीनो का प्रस्थान। परदा उठता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान—लका के बाहर राम की सेना का पडाव

समय—अर्द्ध रात्रि

[दूरी पर लंका नगर दिखायी देता है। किन्तु दूर होने के कारण अन्धकार में वह बहुत धुंधला दिखता है। राम की सेना मैदान में, वृक्षों के नीचे डेरा डाले हुए है। राम की गोद में मूर्च्छित लक्ष्मण पड़े हुए हैं। चारों ओर वानर और भालु बैठे हैं। भालुओ के शरीर भी मनुष्यो के समान ही हैं, पर मुख वानरो से मिलते हैं। नाक कुछ अधिक लम्बी है और वर्ण साँवला है। दो राक्षस भी हैं। एक के सिर पर किरीट है जिससे मालूम होता है कि वह विभीषण है। दूसरे के सम्मुख शीशियाँ, खलबट्टा आदि रखे है जिससे वह वैद्य जान पड़ता है। वानरो में एक वानर के सिर पर और भालुओ में एक भालु के सिर पर किरीट है, अतः ये सुग्रीव और जाम्बवन्त जान पड़ते है।]

राम—(दुःखित स्वर से किरीटवाले राक्षस से) आधी रात्रि बीत चुकी, लकेश, आधी ही और शेष है। अर्द्ध रात्रि के पूर्व ही हनुमान के आने की आशा थी; पर वे अब तक नही लौटे। क्या मन्दभागी राम के भाग मे अभी और कुछ बदा है?

राक्षस—आप दुखित न हो, महाराज, हनुमान प्रात काल के पूर्व अवश्य आ जायँगे।

राम—(किरीटवाले वानर से) क्यो, वानरेश, आपको पूरा भरोसा है कि हनुमान प्रभात के पूर्व आ जायँगे ?

वानर—हनुमान के कार्यो को आप स्वय देख चुके है। श्रीमान्, मुझे तो यही आश्चर्य है कि वे अब तक क्यो नही लौटे, उनके प्रभात के पूर्व लौटने मे तो मुझे तनिक भी सन्देह नही है।

राम—(और भी विकल होकर) और यदि वे न आये तो ? हे लकेश, और हे वानरेश, फिर मै अयोध्या को न लौटूँगा। इतने राक्षसो का सहार हो चुका, फिर बचे हुओ का सहार कर, लका को जीत और वैदेही का उद्धार कर ही मै क्या करूँगा ? बिना लक्ष्मण के मेरा जीवन पलमात्र के लिए सम्भव नही है। मेरे बिना मैथिली का जीवन असम्भव है। यदि ठीक समय पर हम लोग अयोध्या न पहुँचे तो भरत कदापि प्राण न रखेगे। भरत-बिना शत्रुघ्न क्यो जीवित रहेगे। जब हम चारो भाई ही न रहेगे तो हमारी माताएँ और बधुएँ क्यो प्राण रखेगी। अवध की प्रजा का वृत्तान्त मै आपको सुना ही चुका हूँ। लक्ष्मण के बिना अवध का सारा साम्राज्य श्मशान-तुल्य हो जायगा। आप लोगो का यह समस्त सद्उद्योग क्या इस प्रकार निष्फल हो जायगा, बन्धुओ ?

राक्षस—नही, महाराज, यह असम्भव है। धर्म, न्याय और सत्य का कभी यह फल नही हो सकता।

वानर—कर्तव्य-परायणता का यह निष्कर्ष सम्भव नही।

राम—(लक्ष्मण को देख) लक्ष्मण, प्यारे लक्ष्मण, सुमित्रा के एकमात्र प्राणाधार, उर्मिला की जीवन-नौका के खेवट, वैदेही के परम प्रिय देवर, राम के सर्वस्व, उठो, वत्स, उठो। **(आँखों में आँसू भरकर)** तुम तो सदा मेरी आज्ञा मानते थे। मेरी आँख के सकेत पर सब कुछ करने के लिए कटिबद्ध रहते थे। क्या आज मुझे भी भूल गये, प्यारे भ्राता ? तुमने तो

मेरे सन्मुख कभी पिता की अपेक्षा नही की, माता की ममता न रखी, पत्नी का वियोग इस अवस्था मे सहा, आहार, निद्रा, किसीकी ओर लक्ष न रख वन-वन और अरण्य-अरण्य मेरे पीछे घूमे, मेरे पीछे भटके। मेरी यह उपेक्षा क्यो, बन्धु ? मै अवध न भी गया और मैने प्राण भी दे दिये तो पूज्यपाद सुमित्रा मुझे क्या कहेगी ? जिसे मै सदा सौभाग्यवती देख-कर प्रसन्न रहने की अभिलाषा रखता था, उस उर्मिला वधू का क्या होगा ? लक्ष्मण ! हा, लक्ष्मण ! प्रिय वत्स लक्ष्मण ! सर्वस्व लक्ष्मण ! उठो बन्धु, जागो, भ्राता ! **(आँसू बहते है।)**

राक्षस—महाराज, धैर्य, थोडा धैर्य धरिए। हनुमान आते ही होगे।

वानर—हनुमान का आना निश्चित है, महाराज।

राम—**(अत्यन्त कातर हो)** कैसे धैर्य धरूँ, लकेश और वानरेश ? समय बीतता जा रहा है, पल पर पल, त्रुटि पर त्रुटि, कला पर कला, काष्ठा पर काष्ठा और घटिका पर घटिका व्यतीत हो रही है। पहले अर्द्धरात्रि के पूर्व ही हनुमान के आने की आशा थी, पर अब रात्रि आधी से कही अधिक बीत चुकी। हा ! लक्ष्मण को पिता ने वनवास नही दिया था, मुझे दिया था। ये और वैदेही तो मेरे कारण वन आये। बन्धुओ, मै जीता-जागता बैठा हूँ, वैदेही रावण के बन्धन मे पडी है और भ्राता मृत्यु-मुख मे। जो कुछ अब तक हुआ है उससे तो भविष्य अधिक अन्धकारमय ही दिखता है। मेरा भाग्य मुझे ही दु ख नही दे रहा है, पर जिन-जिनसे मेरा सम्बन्ध होता है सभी क्लेश पाते है। पिता की मृत्यु और माताओ तथा भ्राताओ एव सारी प्रजा के कष्ट का मै ही कारण हूँ। ये दो आत्मीय सग आये थे, इनकी यह दशा हुई। पुण्यात्मा जटायु ने वैदेही की रक्षा के लिए मेरे कारण रावण से युद्ध किया तो उनके भी प्राण गये। फिर कैसे शुभाशा करूँ, बन्धुओ ? कैसे मन को ढाढस मिले ?

[नेपथ्य में कोलाहल होता है और ये शब्द होते है—"आ गये हनुमान, आ गये", "पवनकुमार पधार आये", "अंजनासुत की जय", "राजा रामचन्द्र की जय", "वीरवर लक्ष्मण की जय।" एक वानर का एक पर्वत-शिखर के संग प्रवेश। वह वैद्य के सम्मुख पर्वत-शिखर रखता है। राम लक्ष्मण का सिर धीरे से नीचे रखकर, दौड़कर आगन्तुक वानर को हृदय से लगा लेते है। राम के नेत्रों से प्रेमाश्रु की धारा बहने लगती है। पर्वत-शिखर की जमी हुई घास को निकाल वैद्य खल में कूट उसका रस लक्ष्मण के मुख में डालते है। सब लोग एकटक आतुरता से लक्ष्मण की ओर देखते है। रस मुख में जाने के कुछ देर पश्चात् लक्ष्मण, "हे तात, हे तात, रक्षोराज क्या अभी भी जीवित है", कहते हुए नेत्र खोल, उठ बैठते है। राम आँसू बहाते और काँपते हुए हाथों से लक्ष्मण को हृदय से लगाते है। पुनः जय-जयकार होता है। परदा गिरता है।]

चौथा दृश्य

स्थान—एक वन मार्ग

समय—तीसरा पहर

[एक वानर और एक भालु का प्रवेश।]

वानर—अन्त में रक्षोराज का भी वध हुआ। देखा, अधर्म का क्या फल निकला ?

भालु—हाँ, बन्धु, सच है, अधर्म सदा वश भर को डुबोकर रहता है।

वानर—विभीषण के कुटुम्ब को छोड, तथा बालक, वृद्ध और स्त्रियो

के अतिरिक्त कोई भी लका मे न बचा। पाप करनेवाले ही दण्ड नही पाते, पर पाप के पोषक भी पापी के सग ही पिस जाते है। पाप-रूपी दव के लिए द्रव्य और बल वन से अधिक नही है, पर हॉ, तुमने एक बात देखी ?

भालु—क्या ?

वानर—इतने उद्योग से जिन सीता देवी का रघुनाथजी ने उद्धार किया, जब उनके समीप लाने की चर्चा हुई तब हर्ष के स्थान पर उल्टा शोक उनके मुख पर झलक रहा था।

भालु—मैने तो ध्यान नही दिया, पर कारण ?

वानर—तुम्हीने क्या किसीने भी कदाचित् उनकी मुद्रा की ओर ध्यान न दिया होगा। ऐसे असीम हर्ष के समय कौन किसीकी मुद्रा देखता है। कदाचित् मेरा भी भ्रम ही हो, पर नही वे उदास अवश्य थे। उदासी का कोई कारण भी समझ मे नही आता। देखो, अभी वैदेही के आगमन के समय कदाचित् कोई गूढ रहस्य खुले।

[नेपथ्य में "जय, जानकी की जय", "वैदेही की जय", "मैथिली की जय" शब्द होते है।]

वानर—लो, ज्ञात होता है वे शिविर मे आ गयी। चलो, देखे, वियोग के पश्चात् पति-पत्नी किस प्रकार मिलते है।

भालु—हॉ, हाँ, शीघ्र चलो।

[दोनों का शीघ्रता से प्रस्थान। परदा उठता है।]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—राम की सेना का पड़ाव

समय—तीसरा पहर

[वानर और भालुओ के बीच में राम और लक्ष्मण बैठे हैं। राम अत्यन्त उदास मालूम होते हैं। बाकी सब प्रसन्न हैं। जय-घोष के बीच सीता और सरमा का प्रवेश।]

सीता—(आँसू बहाती हुई शीघ्रता से राम की ओर बढ़) आर्य-पुत्र, आर्य-पुत्र ! **(राम के चरण पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाती है, उदास राम खड़े होकर पीछे हट जाते हैं। लक्ष्मण भी खड़े हो जाते हैं।)**

राम—ठहरो मैथिली, ठहरो, तुम पत्नी के नाते मेरा स्पर्श करने योग्य नही हो।

[सीता स्तभित हो जाती है, लक्ष्मण आश्चर्य से एकटक राम की ओर देखने लगते हैं। सारा जन-समाज चौंक पड़ता है। निस्तब्धता छा जाती है। कुछ देर पश्चात् राम धीरे-धीरे बोलते है।]

राम—बन्धुओ, जानकी का रावण से उद्धार करना मेरा कर्तव्य था, यदि मै यह न करता तो कायर कहलाता, सूर्यवश के निर्मल आकाश मे मै धूमकेतु के तुल्य हो जाता, अधर्म की धर्म पर जय होती और अन्याय की न्याय पर। मैंने आप लोगो की सहायता से अपने कर्तव्य का पालन कर दिया, सूर्यवश की प्रतिष्ठा रह गयी, पर, पर-गृह मे रही हुई स्त्री का, चाहे वह मुझे प्राणो से प्रिय क्यो न हो, ग्रहण करना मेरे लिए सम्भव नही है; यह धर्म की मर्यादा और नीति की सत्ता का उल्लघन होगा। जिस मर्यादा के बाहर मै बाल्यावस्था से ही कभी नही गया हूँ और जिसके लिए मै चौदह वर्ष को वन आया हूँ, उस धर्म और नीति की मर्यादा का उल्लंघन मेरे लिए असम्भव है। **(सीता से)** मैथिली, मै जानता हूँ। इसमे तुम्हारा दोष नही है। मै यह भी जानता हूँ कि तुम्हारे इस सदा के वियोग

के कारण यदि मेरे प्राण तत्काल न गये और यदि मै भविष्य के अपने कर्तव्यो को करने के लिए इस शरीर को जीवित रख सका तो भी तुम्हारे वियोग का दु ख सदा मुझे पीडित करता रहेगा। उन दिनो, उन घटिकाओ, उन पलो की स्मृति, जो मैने तुम्हारे सग अयोध्या मे और वन मे व्यतीत किये है, सदा मुझे व्यथित करती रहेगी। तुम यह न सोचना कि मै पुन विवाह कर, चाहे वह सुख के लिए हो या सन्तान के, अथवा यज्ञ के लिए तुम्हारे स्थान की पूर्ति कर लूँगा। नही, वैदेही, नही, राम से यह कभी न होगा। गृहस्थ-सुख से वचित राम चाहे दु ख पावे, सतति-रहित राम पितृ-ऋण न चुका सकने के कारण चाहे पुन जन्म लेवे, तुम्हारे बिना यज्ञ न कर सकने के कारण राम चाहे नरक मे पडे, पर अन्य स्त्री का राम के हृदय पर प्रतिष्ठित होना असम्भव है, साथ ही धर्म और नीति की मर्यादा की रक्षा के हेतु तुम्हारे और मेरे इस शरीर के रहते हमारी भेट भी अब सम्भव नही। **(जल्दी-जल्दी)** तुम स्वतन्त्र हो, मैथिली, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहाँ जा सकती हो और जो तुम्हारी इच्छा हो वह कर सकती हो।

[राम के भाषण से लक्ष्मण-सहित सारा जन-समुदाय अपना मस्तक झुका लेता है, किसीके मुख से एक शब्द भी नहीं निकलता। निम्न-मुख सीता के नेत्रो से बहते हुए अश्रु उनके वक्षस्थल के वस्त्र को भिगो देते हैं। कुछ देर निस्तब्धता रहती है। उसके पश्चात् रुँधे हुए कण्ठ से सीता धीरे-धीरे बोलती है।]

सीता—नाथ, धर्म की मर्यादा और नीति की रक्षा के लिए आपने जो कुछ कहा वह उचित ही होगा, पर मेरे लिए तो मेरा धर्म, मेरी नीति **(राम के चरणो की ओर संकेत कर)** ये चरण ही है। राक्षस के गृह मे इतने काल तक रहने मे मेरा कोई दोष नही है यह आप स्वीकार ही करते है। मै आपको इतना विश्वास दिला सकती हूँ कि मै शुद्ध, नितान्त शुद्ध

हूँ । आर्यपुत्र, यदि यह शरीर शुद्ध न होता तो आपके चरणो के समीप आने के पूर्व ही नष्ट हो जाता, इसका इस भूमि पर रहना ही सम्भव न था। आप कहते है, मै स्वतन्त्र हूँ और जहाँ चाहे वहाँ जा सकती हूँ, परन्तु, नाथ, इन चरणो के अतिरिक्त ससार मे मेरे लिए स्थान ही कहाँ है ? पर नही, मै आपके धर्म, आपकी नीति और आपके कर्तव्य-मार्ग का कण्टक न बनूँगी। मै आपको अपने ग्रहण करने के लिए बाध्य नही करना चाहती। उन राजर्षि विदेह की कन्या, जिन्हे शरीर रहते हुए भी शरीर का कोई मोह न होने के कारण विदेह की पदवी मिली है, उन महाराज दशरथ की वधू, जिन्होने अपने वचन को सत्य करने के लिए अपने शरीर को भी छोड दिया और उनकी पत्नी जो धर्म, नीति और कर्तव्य के मूर्तिमन्त स्वरूप है, अपने स्वार्थ-हेतु, प्रेम अथवा किसी भी साधन द्वारा अपने पति को किसी बात के लिए भी विवश करने का प्रयत्न तक न करेगी। परन्तु, आर्यपुत्र, आपने मुझे जो दूसरी स्वतन्त्रता दी है, अर्थात् मै जो चाहूँ सो कर सकती हूँ, उसका मै आज उपयोग करूँगी। ससार मे मेरे लिए अन्य कोई स्थान न रहने के कारण या तो मै इन चरणो के सम्मुख अग्नि मे भस्म हो जाऊँगी या यदि सतीत्व का प्रताप अग्नि से भी रक्षा कर सकता है तो उस अग्नि की लपटो मे से भी जीती-जागती निकल, आपके चरण स्पर्श करने के लिए आपको विवश करूँगी।

राम—(प्रसन्न हो गद्गद कण्ठ से) वैदेही, तुम राजर्षि विदेह की सच्ची पुत्री हो, तुम महाराज दशरथ की सच्ची वधू हो, नही तो ऐसे वाक्य किस नारी के मुख से निकल सकते है ? ऐसा साहस कौन नारी कर सकती है ? मैथिली, यदि अग्नि भी तुम्हे भस्म न कर सकी तो मै तुम्हे अवश्य ग्रहण कर लूँगा। ससार मे अपने सत्य की आज तक ऐसी परीक्षा किसीने नही दी।

सीता—(जल्दी-जल्दी) नाथ, अब आप तत्काल काष्ठ की चिता

बनवाइए, मुझे इस समय का एक-एक पल युग से भी अधिक हो रहा है।

राम—(**लक्ष्मण से**) लक्ष्मण, बिना विलम्ब इसका प्रबन्ध करो।

लक्ष्मण—(**दीर्घ निश्वास छोड़कर**)जो आज्ञा।

[लक्ष्मण, कुछ वानर और भालुओ के संग जाते है, काष्ठ आता है, चिता तैयार होती है। उपस्थित जन-समुदाय मस्तक नीचा कर एकटक चिता की ओर देखता है। अनेक के नेत्रो से अश्रु बहते है।]

राम—अच्छा लक्ष्मण, इसमे अग्नि लगाओ।

लक्ष्मण—(**दीर्घ निश्वास छोड़कर**) यह भी मै ही करूँ, तात ?

राम—क्यो, तुम्हे खेद होता है ?

लक्ष्मण—आपकी कोई भी आज्ञा मानने मे मुझे खेद नही हुआ, पर

राम—अच्छा, मै ही करता हूँ। (**राम आगे बढ़ते है।**)

लक्ष्मण—(**जल्दी से**) नही, नही, तात, मै ही करूँगा, मै ही करूँगा। आपकी कोई भी आज्ञा लक्ष्मण कैसे उल्लघन कर सकता है।

[लक्ष्मण चिता में अग्नि लगाते है। कुछ देर में ज्वालाएँ निकलती है।]

सीता—(**चिता की ओर देख, राम के निकट बढ़कर**) जाती हूँ, आर्यपुत्र, इस चिता की भीषण अग्नि को आलिगन करने सहर्ष जाती हूँ। यदि सतीत्व के प्रताप ने इस अग्नि से रक्षा की तो इसी शरीर से आपको पुन प्राप्त करूँगी अन्यथा जहाँ इस शरीर को छोड़कर जाऊँगी वहाँ।

[सीता चिता की ओर बढ़ती है। राम का मस्तक अत्यधिक झुक जाता है। जन-समूह मस्तक उठा एकटक सीता और चिता को देखता है।]

सरमा—(एकाएक आगे बढ़कर चिता और सीता के बीच मे आ) ठहरो, वैदेही, ठहरो। मै भी तुम्हारे सग चितारोहण करूँगी।

[सीता आश्चर्य से स्तंभित हो रुक जाती है, जन-समुदाय की दृष्टि एकाएक सरमा की ओर घूम जाती है, जिसमें अत्यधिक आश्चर्य दृष्टि-गोचर होता है। राम सिर उठाकर तथा विभीषण आश्चर्य से सरमा की ओर देखते है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है। सरमा सीता की भुजा पकड़ चिता की ओर बढ़ती है।]

राम—(शीघ्रता से) ठहरिए, सरमा देवी, ठहरिए। आप यह क्या अनर्थ कर रही है और क्यो?

सरमा—(रुककर) एक महान् अनर्थ को रोकने के लिए, देव।

सीता—(जल्दी से) मेरी रक्षा के लिए? जिसमे तुम्हारे कारण मैं चितारोहण न करूँ?

सरमा—नही, मैथिली, परन्तु इसलिए कि जगत् मे एक मिथ्या बात सत्य सिद्ध न हो पावे।

सीता—मै तुम्हारा अभिप्राय ही नही समझी।

सरमा—देखो, वैदेही, तुम अपने सतीत्व का इस प्रकार प्रमाण देने जा रही हो जिससे उल्टा यह सिद्ध होगा कि तुम सती न थी। तुम्हारे समान सती का, ऐसी सती का, जिससे बडी सती मेरे मतानुसार आज पर्यन्त इस संसार मे कभी नही हुई, असली सिद्ध होना जगत् मे एक महान् मिथ्या बात का सत्य सिद्ध होना होगा।

सीता—अभी भी मै तुम्हारे कथन का अर्थ नही समझ सकी।

सरमा—तुम समझती हो कि इस अग्नि से अपने सतीत्व के प्रताप के कारण तुम जीती हुई निकल आओगी ?

सीता—मै नही जानती कि क्या होगा।

सरमा—परन्तु मै जानती हूँ। तुम्हारा भस्म होना निश्चित है। सतीत्व का प्रताप आधिभौतिक शरीर को अग्नि से बचा सकने मे असमर्थ है। अग्नि का धर्म दग्ध करना है। वह पवित्र और अपवित्र दोनो को समानरूप से दग्ध करेगी। तुम्हारा शरीर नष्ट होते ही ससार कहेगा तुम अपनी परीक्षा मे अनुत्तीर्ण हो गयी अत तुम सती न थी। मै किसी पर-पुरुष के गृह मे नही रही हूँ। मै तुम्हारे सग चितारोहण कर ससार को इस बात का प्रमाण देना चाहती हूँ कि अग्नि का धर्म ही जलाना है, अत उसने सीता सती के सग ही सती सरमा के शरीर को भी जला दिया। सीता इसलिए भस्म हो गयी कि अग्नि का धर्म भस्म करना है न कि इसलिए कि वे असती थी।

[जन-समुदाय में 'धन्य है, धन्य है' शब्द होता है।]

सीता—परन्तु . परन्तु .मेरे लिए तुम . ।

सरमा—तुम्हारे लिए नही, मैथिली, किन्तु ससार मे एक मिथ्या बात को सत्य सिद्ध होने से रोकने के .... ।

[सरमा सीता की भुजा पकड़े हुए पुनः चिता की ओर बढ़ती है। जन-समुदाय में हाहाकार होता है।]

लक्ष्मण—(आगे बढ़कर सीता और सरमा से) ठहरिए, माता, और ठहरिए, सरमा देवी। मुझे आपसे एक बात पूँछ लेने दीजिए।

(दोनों रुक जाती हैं। राम से—) तात, इन दोनो सतियो को इस प्रकार भस्म होने देना ही क्या आप इस समय का धर्म और कर्तव्य मानते है ? सरमा देवी के इस कथन मे क्या आप सत्यता नही मानते कि अग्नि का धर्म ही जलाना है ? वह पवित्र और अपवित्र दोनो को ही जलाती है ?

राम—(कॉंपते हुए स्वर में) परन्तु, लक्ष्मण, राक्षस के गृह मे रही हुई सीता को ग्रहण करना धर्म और कर्तव्य की दृष्टि से कहॉं तक उचित है यह प्रश्न भी तो मेरे सम्मुख है।

लक्ष्मण—सीता देवी अपनी पवित्रता का इससे बडा क्या प्रमाण दे सकती थी, आर्य, कि वे अग्नि को भी आलिंगन करने के लिए सहर्ष प्रस्तुत हो गयी। अब एक ओर इन दोनो सती-साध्वियो के शरीर की रक्षा और इनकी शरीर रक्षा ही नही, परन्तु उससे भी कही बडी वस्तु एक मिथ्या बात को सत्य सिद्ध होने से रोकने का प्रश्न है और दूसरी ओर आपका सीता देवी के ग्रहण करने का प्रश्न। तात, क्या अग्नि को इस प्रकार आलिगन करने के लिए सहर्ष प्रस्तुत होना ही उनकी अग्नि-परीक्षा नही है ? क्या आज पर्यन्त अपने सतीत्व की ऐसी परीक्षा किसीने दी है ?

[राम पुनः मस्तक झुका लेते है। जन-समुदाय उत्कंठित हो एक-टक राम की ओर देखता है। कुछ देर तक निस्तब्धता रहती है।]

लक्ष्मण—(राम को उत्तर न देते देखकर जन-समुदाय की ओर लक्ष्य कर) क्या आप लोग सीता देवी की इस परीक्षा को ही अग्नि-परीक्षा नही मानते ? क्या उनकी शुद्धता मे किसीको सन्देह है ?

जन-समुदाय—(एक स्वर से) किसीको नही, किसीको नही। वैदेही नितान्त शुद्ध है। मैथिली परम पवित्र है। यही उनकी अग्नि-परीक्षा है। यही उनकी अग्नि-परीक्षा है।

[राम मस्तक उठाकर आँसू-भरी हुई दृष्टि से सीता की ओर देखते हैं।]

यवनिका--पतन

चौथा अंक

पहला दृश्य

स्थान—अयोध्या का एक मार्ग

समय—सन्ध्या

[मार्ग वही है जो पहले अंक के दूसरे दृश्य में था। एक ओर से चार पुरवासियो का प्रवेश ।]

एक—समय निकलते कुछ भी विलम्ब नही लगता।

दूसरा—हाँ, देखो न, दु ख के चौदह वर्ष भी किसी न किसी प्रकार बीत ही गये।

तीसरा—पर, जिस प्रकार गत आठ मास बीते है उस प्रकार चौदह वर्ष न बीते थे।

चौथा—राम-राज्य सचमुच जैसी कल्पना की थी वैसा ही हुआ। आज राम को सिहासनासीन हुए लगभग आठ मास ही हुए, परन्तु इन

आठ मासो मे ही अवध का कैसा कायाकल्प हो गया है। राम राजाओ के चारो व्यसनो मद्यपान, द्यूत, स्त्री-सभोग और मृगया से मुक्त है। उनका एकमात्र व्यसन प्रजा-सेवा है। इसीलिए प्रजा को स्वर्गीय सुख है।

तीसरा—इस सूर्यवश मे भी कैसे-कैसे महान् जन हुए। ये चार भाई हुए तो चारो ही अपूर्व। राम की कर्तव्यशीलता अद्वितीय, लक्ष्मण की आज्ञा-परायणता अद्भुत, भरत का त्याग असीम और शत्रुघ्न का विलक्षण कार्य तो गत चौदह वर्षो मे देख ही लिया है।

पहला—पर, तुमने एक बात सुनी ?

तीसरा—क्या ?

पहला—जानकी को गर्भ है।

तीसरा—हाँ, यह तो सुना है और सुनकर बडा आनन्द भी हुआ।

पहला—पूरे दिन होना चाहते है।

चौथा—सो भी होगा, फिर ?

पहला—फिर क्या ? राम को राक्षस के घर रही हुई पत्नी को ग्रहण करना क्या उचित था ?

दूसरा—पर, उन्होने सीता देवी की परीक्षा के पश्चात् उन्हे ग्रहण किया है।

तीसरा—और वह भी मैथिली ने ऐसी परीक्षा दी जैसी ससार में आज तक किसीने न दी थी। सुना नही, वे अग्नि मे प्रवेश कर ज्यो की त्यो बाहर निकल आयी थी।

पहला—यह तो राम तक नही कहते, परन्तु हाँ, यह अवश्य सुना

पहला—राम सीता देवी पर अत्यधिक प्रेम करते है और प्रजा में अपवाद भी नही चाहते इसलिए।

तीसरा—अर्थात् राम ने ही यह झूठ बात फैलवायी है।

चौथा—कदापि नही, राम ऐसी मिथ्या बात कभी नही फैला सकते।

पहला—यह अपने-अपने विश्वास की बात है।

दूसरा—**(सिर हिलाते हुए)** जो कुछ भी हो, पर अच्छा ही होता, यदि महाराज सीता देवी को ग्रहण न करते।

पहला—सच कहा, यह उनके निष्कलक चरित्र मे सदा कलक रहेगा। सूर्यवश मे ऐसा कोई नही हुआ, जिसने पर-घर मे रही हुई स्त्री को ग्रहण किया हो।

तीसरा—यदि यह उनका दोष भी मान लिया जाय तो दोष किसमे नही होते?

चौथा—हाँ, गुणी सदा गुण की ओर ही लक्ष रखते है।

पहला—पर, सर्व-साधारण की दृष्टि सदा दोषो की ओर ही जाती है। यह अपवाद राज्य मे बहुत फैलता जा रहा है। जब से लोगो को ज्ञात हुआ है कि जानकी गर्भवती है तब से तो बहुत अधिक चर्चा हो रही है। लोग कहते है कि क्या अब राक्षस-पुत्र अवध के राजा होगे।

चौथा—इस पचायत ही पचायत मे वह धर्म-सभा हो जायगी और हम यही खड़े रह जायँगे।

तीसरा—हाँ, हाँ, चलो। इस प्रकार की चर्चाएँ तो नित्य की चक्की हैं, चला ही करती है।

[चारो का प्रस्थान। परदा उठता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान—राम के प्रासाद का कक्ष

समय—तीसरा पहर

[कक्ष वही है जो पहले अंक के पहले दृश्य में था। राम चौकी पर बैठे और लक्ष्मण खड़े हैं। दोनो के राजसी भेष है।]

लक्ष्मण—**(सिर नीचा किये, दुःखित स्वर में)** तो महाराज, यह आपका अन्तिम निर्णय है?

राम—**(दुःखित स्वर में जल्दी-जल्दी)** हाँ, लक्ष्मण, अन्तिम, सर्वथा अन्तिम। राजा का कर्तव्य प्रजा-पालन ही न होकर प्रजा-रजन भी है। जिस राजा के लिए प्रजा मे इस प्रकार का अपवाद हो वह राजा कभी न तो राज्य के योग्य है और न राज्य कर ही सकता है।

लक्ष्मण—परन्तु, महाराज, महारानी निर्दोष, सर्वथा निर्दोष है, शुद्ध, नितान्त शुद्ध है।

राम—परन्तु, यह अपवाद उन्हे शुद्ध कह देने मात्र से शान्त नही होगा। वत्स, इसके लिए मुझे और वैदेही दोनो को ही तपस्या करनी होगी।

लक्ष्मण—परन्तु, महाराज, वे अपनी शुद्धता प्रमाणित करने के लिए अग्नि को आलिगन करने के लिए भी प्रस्तुत थी।

राम—अग्नि को आलिगन किया तो नही न?

लक्ष्मण—जिस प्रकार वे प्रस्तुत हुई थी उस प्रकार प्रस्तुत होना ही क्या उनकी शुद्धता का पूर्ण प्रमाण नही है?

राम—प्रजा तो उनका उस प्रकार प्रस्तुत होना भी नही मानती।

लक्ष्मण—प्रजा यदि कोई बात नही मानती तो प्रजा के अनुचित हठ के कारण महारानी को त्यागकर उनपर अत्याचार करना भी तो अधर्म है।

राम—हो सकता है, पर मै स्वय अपने सुख के लिए यह अधर्म नही कर रहा हूँ। मुझे क्या मैथिली के त्याग से कम दु ख होगा ? मेरा मन क्या रात्रि और दिवस उसके ऊपर किये गये अत्याचार और उसके वियोग से नही कुढेगा, हृदय नही फटेगा, विदीर्ण न होता रहेगा ? लगभग एक वर्ष तक जब उसका और मेरा वियोग रहा, तब तुमने मेरी स्थिति नही देखी थी ? यह वियोग तो, सम्भव है, चिरवियोग हो जावे। सम्भव है, वैदेही अपने प्राण ही त्याग दे या इसे न सह सकने के कारण, सम्भव है, मेरा यह शरीर ही न रहे। पर, इससे क्या ? इससे क्या, वत्स ? राजा के कर्तव्य का पालन तो करना ही होगा। जब राजपद का उत्तरदायित्व ग्रहण किया है तब एक वैदेही के प्रति अत्याचार करने के भय से अथवा एक वैदेही के प्रति अधर्म हो जाने के डर से, चाहे वह मुझे कितनी ही प्रिय क्यो न हो, सारी प्रजा को असन्तुष्ट तो नही किया जा सकता, छोटे पाप के लिए एक बडा पाप तो नही हो सकता।

लक्ष्मण—**(आँसू भरकर)** महाराज, महारानी गर्भवती है; पूरे दिन है।

राम—**(खड़े होकर भर्राये हुए स्वर से)** अब और कुछ न कहो, वत्स, और कुछ न कहो। पिता की मृत्यु का कारण राम है और सन्तान की मृत्यु का कारण होना भी कदाचित् राम के भाग्य मे लिखा है। राम का जन्म रूखा-सूखा कर्तव्य पालन करने और दु ख पाने के लिए ही हुआ है, सुख के लिए नही। तुम तो मेरी आज्ञा बिना प्रश्न किये ही मानते रहे

हो, जाओ, इसका भी पालन करो, लक्ष्मण, इसका भी। तपोवन दर्शन की उसने इच्छा प्रकट की थी, अत वाल्मीकि के आश्रम के निकट, अत्यन्त निकट उसे छोडना। वही उसे मेरा सन्देश देना, यहाँ नही, लक्ष्मण। देखो, स्पष्ट कहना कि राम तुम्हे शुद्ध, नितान्त शुद्ध समझता है। पर, जनसाधारण के सन्तोष के लिए यह आवश्यक है कि वह और मै दोनो ही तपस्या करे।

लक्ष्मण—(कातर दृष्टि से राम की ओर देखते हुए) महाराज महाराज ।

राम—(सिर नीचा कर इधर-उधर टहलते हुए) बस, वत्स, बस, अब एक शब्द नही, इस विवाद से मुझे दु ख, घोर दु ख होता है, मेरा हृदय फटता है। जाओ, जाओ, शीघ्राति-शीघ्र जाओ। जो मैंने कहा वही करो, मुझसे अब इस सम्बन्ध मे एक शब्द न कहो।

[लक्ष्मण की ऑखो से आँसू बहने लगते है। वे मस्तक नीचा किये धीरे-धीरे चले जाते है। लक्ष्मण के जाने के पश्चात् राम—"हाय रे हतभाग्य राम" यह कहते हुए बैठकर अपना सिर हाथों पर रख, बालको के समान फूट-फूटकर रो पड़ते है। परदा गिरता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान—अयोध्या का मार्ग

समय—प्रात काल

[मार्ग वही है जो पहले अंक के दूसरे दृश्य में था। दो पुरवासियों का प्रवेश।]

एक—सुना, बन्धु, प्रजा मे अपवाद के कारण प्रजा के सतोष के लिए महाराज ने सती महारानी का भी त्याग कर दिया।

दूसरा—हाँ, और उस समय, जब ये गर्भवती है।

पहला—फिर उनपर महाराज का अत्यधिक प्रेम था !

दूसरा—कौन करेगा, बन्धु, कौन राजा अपने कर्तव्य का इस प्रकार पालन करेगा ?

[एक ओर से वसिष्ठ और दूसरी ओर से हाथ में एक बालक का शव लिए एक ब्राह्मण का प्रवेश।]

ब्राह्मण—(वसिष्ठ से) दुहाई है, भगवन्, दुहाई है। आप ही के पास जा रहा था, आप ही के। इस दुखी ब्राह्मण का कष्ट निवारण कीजिए। यह देखिए, यह मेरा पुत्र मर गया है। इकलौता पुत्र था, प्रभो, इकलौता। जब से राम का राज्य हुआ तब से तो किसी पिता के सम्मुख कोई पुत्र नही मरा। मैने बहुत विचार कर देखा, मैने कोई पाप नही किया, जिससे यह मर जाता। इसकी माता ने भी विचारा, उसने भी कोई पाप नही किया, फिर यह किस पाप से मर गया, देव ? राजा के पाप से, अथवा कुल-गुरु के पाप से ? या तो आप मुझे सन्तुष्ट कीजिए, या मै भी इस बालक के सग ही अपने प्राण दे दूँगा, इसकी माँ भी मर जायगी और एक ब्राह्मण का कुल नष्ट हो जायगा। **(रोता है।)**

वसिष्ठ—इतने दु खित और आतुर न हो, ब्राह्मण, इसपर विचार होगा। राम-राज्य मे यह अनर्थ सचमुच आश्चर्य-जनक है। चलो, मै तुम्हारे साथ पहले आश्रम को चलता हूँ। वहाँ योगबल से इसका कारण खोजूँगा। यदि राजा से इसका सम्बन्ध होगा तो तत्काल राज-भवन को चलूँगा।

[दोनों का प्रस्थान।]

पहला पुरवासी—चलो, बन्धु, हम लोग भी चलकर देखे, इसमे क्या रहस्य निकलता है ?

दूसरा—अवश्य।

[दोनो का वसिष्ठ और ब्राह्मण के पीछे-पीछे प्रस्थान। परदा उठता है।]

चौथा दृश्य

स्थान—राम के प्रासाद की दालान

समय—तीसरा पहर

[दालान में पीछे की ओर रँगी हुई भित्ति है और दोनों ओर दो स्तंभ तथा स्तंभो के नीचे कुंभी और ऊपर भरणी। राम और लक्ष्मण टहलते हुए बातें कर रहे है।]

राम—जब तुमने उसे मेरा सन्देश सुनाया, उसी समय वह आश्रम को चली गयी ?

लक्ष्मण—नही, महाराज, मेरे सामने वे नही गयी, जब तक मै खडा रहा, वे खड़ी रही। मैने जब गगा पार की और उस पार से देखा तब भी वे खडी हुई मेरी नौका को देख रही थी, जब मै रथारूढ हुआ तब भी वे खडी थी और जब तक मार्ग के मोड पर मेरा रथ न घूम गया तब तक वे मुझे बराबर वही खडी दिखी। महाराज, यह क्रूर हृदय लक्ष्मण ही वन में उन्हे अकेली तजकर चला आया, गर्भवती अवस्था मे छोडकर लौट आया, मुख-मोडकर भाग आया, हृदय पर पत्थर रखकर आ गया।

पर, वे, आह ! वे तो अन्त तक मुझे वही खडे-खडे देखती रही। **(लक्ष्मण के अश्रुधारा बहती है।)**

राम—(लम्बी सॉस लेकर) हा !

लक्ष्मण—आपको उन्होने सन्देश भी दिया है।

राम—(उत्सुकता से) क्या वत्स, क्या सन्देश दिया है ?

लक्ष्मण—मैंने उसे पत्र पर लिख लिया है। मै उनके सन्देश को आपके सम्मुख जैसा का तैसा पढूँगा, महाराज, उसका एक-एक वाक्य, एक-एक शब्द, एक-एक अक्षर और एक-एक मात्रा निरन्तर जप करते रहने की वस्तु है।

राम—पढो, लक्ष्मण, पढो, उसे भी यह हतभाग्य राम हृदय पर पत्थर रखकर सुनेगा।

लक्ष्मण—(एक कागज पढ़ते है) "नाथ ! आपके त्याग से जो कष्ट मुझे हुआ और होगा उसका वर्णन मै शब्दो मे नही कर सकती। सच्चे भावो के पूर्ण प्रकाशन के लिए शब्द कभी यथेष्ट नही होते, फिर ऐसे अवसर पर न शब्द ही स्मरण आते है और न उनसे वाक्य-रचना ही हो सकती है। इस कष्ट के निवारण का सरल उपाय यही था कि मैं अपने प्राण दे देती, पर, आपने मुझे ऐसे समय त्याग किया जब यदि मै ऐसा करूँ तो मुझे ही आत्म-हत्या और गर्भ-हत्या का पाप न लगेगा, पर, आपके प्रति आपकी सन्तानोत्पत्ति के अपने कर्तव्य से भी मै च्युत हो जाऊँगी, जो विश्व मे मै अपना सबसे बडा धर्म मानती हूँ। लका मे मैं आपके वियोग मे आपके पुन दर्शन की आशा पर जीवित थी, अब मुझे वह अवलम्ब भी नही है। मेरे प्रयत्न करते रहने पर भी कि मै जीवित रह आपकी सन्तति की उत्पत्ति और उसका पोषण कर सकूँ, यदि इस वियोग के न सह

सकने के कारण मेरी मृत्यु हो जावे, तो आप मुझे क्षमा करेंगे, आपके क्षमा न करने से तो न जाने मेरी क्या गति होगी।"

राम—(आँसू पोंछते हुए) आह ! आह !

लक्ष्मण—(आँसू पोछते हुए) "आर्यपुत्र, मै जानती हूँ कि आपको मेरे वियोग से दु ख होगा, पर, मै हाथ जोडकर आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप मेरे लिए दुखी न हो। आप यह भी न विचारे कि मेरे दु खो के कारण आप है। आपको मैं मनसा, वाचा और कर्मणा किसी प्रकार भी दोषी नही ठहराती। यह मेरे भाग्य का दोष है या मेरे पूर्व सचित पापो का फल है कि मुझे आपके वियोग का दु ख मिल रहा है, जिससे बडा ससार मे मेरे लिए और कोई दु ख नही हो सकता। इस दु ख मे भी सबसे अधिक क्लेश मुझे इस बात का रहेगा कि आप मेरे लिए दुखी रहेगे, इसलिए मै फिर आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप मेरे लिए दुखी न हो।"

राम—(टहलते हुए) आह ! लक्ष्मण, आह ! मेरे ऐसे क्रूर काण्ड पर भी उसने मुझे दोष नही दिया, नही धिक्कारा ?

लक्ष्मण—(गद्‌गद कण्ठ से) दोष देना और धिक्कारना कैसा, महाराज। उन्होने तो इसके विपरीत अपने भाग्य को ही दोष दिया है, अपने कल्पित पापो को ही दोप दिया है।

राम—और उसने क्या कहा, बन्धु ?

लक्ष्मण—उन्होने इस प्रकार अपना सन्देश पूर्ण किया—"नाथ, आप मुझे भूलने का उद्योग कीजिएगा, क्योकि दु ख मे कर्तव्यो का ठीक पालन नही हो सकता। मै आपके सग रहे हुए दिनो का स्मरण करते हुए, आपके स्वरूप का ध्यान और आपके नाम का जप करते करते आपकी सन्तति का पोषण करने के लिए जीवित रहने का प्रयत्न करूँगी। जब मेरा

अन्त समय उपस्थित होगा उस समय आपके पाद-पद्मो मे चित्त रख मैं यही विनय करती हुई प्राणो को तजूँगी कि जन्म-जन्म मुझे आपके समान ही पति प्राप्त हो।"

[इतना पढ़ते-पढ़ते लक्ष्मण बालकों के समान फूट-फूटकर रोने लगते है। राम के नेत्रों से भी अश्रुधारा बह निकलती है और वे इधर-उधर टहलने लगते है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है। राम फिर धीरे-धीरे कहते है।]

राम—और भी कुछ वैदेही ने कहा, लक्ष्मण?

लक्ष्मण—(**धीरे-धीरे रुँधे हुए कण्ठ से**) आपके कहने को कुछ नही, महाराज, पर, मुझे आपके स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे सदा सतर्क रहने के लिए बहुत कुछ कहा है। मै तो उन्हे सान्त्वना तक न दे सका, पर उन्होने उल्टी मुझे सान्त्वना दी है।

राम—(**लम्बी साँस ले**) इतने पर भी उसे मेरी चिन्ता है! इतनी चिन्ता, वत्स!

[प्रतिहारी का प्रवेश।]

प्रतिहारी—(**अभिवादन कर**) गुरुदेव पधारे है, श्रीमान् से भेंट करना चाहते है।

राम—(**सँभलकर**) उन्हे आदरपूर्वक भीतर भेज दो।

[राम-लक्ष्मण दोनो, नेत्र पोंछ स्वस्थ होने का प्रयत्न करते है। वसिष्ठ का प्रवेश। राम, लक्ष्मण प्रणाम करते है। वसिष्ठ आशीर्वाद देते है।]

वसिष्ठ—राज्य मे एक घोर अधर्म हो रहा है, उसे तुम्हे निवारण करना है, राम।

राम—(**चौंककर और भी स्वस्थ हो**) अधर्म, भगवन्! कैसा अधर्म? मेरे कर्तव्य-च्युत होने से तो कोई अधर्म नहीं हो रहा है, प्रभो?

वसिष्ठ—नहीं वत्स, नहीं, तुम्हारे सदृश कर्तव्यपरायण और प्रजा-रंजक कौन होगा, जिसने प्रजा-रंजन के लिए वैदेही-सदृश पत्नी तक का त्याग कर दिया।

राम—तब क्या है, देव?

वसिष्ठ—आज प्रातःकाल एक ब्राह्मण-पुत्र की उसके माता-पिता के जीवित रहते हुए मृत्यु हो गयी, उसने मुझसे यह वृत्त कह इसका कारण पूछा, मैंने योग-बल से कारण का पता लगा लिया है, राम।

राम—अब तक तो राज्य में ऐसा कभी नहीं हुआ था, क्या कारण है, नाथ?

वसिष्ठ—दण्डकारण्य में शम्बूक नामक एक शूद्र तप कर रहा है। दण्डकारण्य तुम्हारे राज्य में है। इस पाप से यह ब्राह्मण-पुत्र मरा है।

राम—(**आश्चर्य से**) तपस्या करना पाप हुआ, भगवन्?

वसिष्ठ—धर्म और पाप की बड़ी गूढ़ व्याख्या है। स्थान, काल और पात्र के अनुसार इनका स्वरूप निर्धारित होता है। इस काल में, इस राज्य में, शूद्र की तपस्या पाप ही है।

राम—तो क्या करना होगा, प्रभो?

वसिष्ठ—तुम तत्काल दण्डकारण्य जाओ, शूद्रक उल्टा सिर किये हुए तप कर रहा है, उसे खोज लेना। या तो उसे तपस्या से विमुख करो, या उसका वध।

राम—(**आश्चर्य से**) तपस्वी का वध, नाथ ?

वसिष्ठ—हाँ, यही इस समय का धर्म है; विलम्ब नही, तत्काल।

राम—जैसी आज्ञा।

[**राम और लक्ष्मण का वसिष्ठ को प्रणाम कर एक ओर, और वसिष्ठ का आशीर्वाद दे दूसरी ओर प्रस्थान। परदा उठता है।**]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—दण्डक-वन

समय—सन्ध्या

[**घना जंगल है। अस्त हुए सूर्य की सुनहरी किरणें वृक्षों के ऊपरी भागों पर पड़ रही है। एक वृक्ष से लटका और नीचे की ओर मुँह किये वृद्ध शम्बूक तप कर रहा है। जटा और दाढ़ी बढ़ गये है। शरीर जर्जर हो गया है। चार घोडों से जुता हुआ एक रथ आता है। रथ वैसा ही है जैसा पहले अंक के तीसरे दृश्य में था। रथ पर राम और लक्ष्मण बैठे है। राम, लक्ष्मण शम्बूक को देख विमान से नीचे उतरते है।**]

राम—(**लक्ष्मण से**) यही शम्बूक जान पडता है। यही दण्डकारण्य है। यही निकट ही पचवटी है। यही अनेक वर्ष तुम्हारे और वैदेही के सग आनन्दपूर्वक निवास किया था। अब कहाँ वे दिन, लक्ष्मण ? क्या कभी जीवन मे फिर वैसे आनन्द के दिन आवेगें ? उस समय तो वे बडे कष्ट-प्रद मालूम होते थे, अयोध्या-निवासियो के दु ख से हृदय विह्वल रहता था, पर वे ही दिन उत्तम थे, वे ही। वत्स, यह कर्तव्य सचमुच बडा

विलक्षण है। अब तो जानकी के लिए रोने तक का अवकाश नही है।

लक्ष्मण—इसमे क्या सन्देह है, महाराज!

राम—(**शम्बूक के निकट जाकर**) शम्बूक, तुम मुझे जानते हो?

शम्बूक—(**उसी स्थिति मे ध्यानपूर्वक राम को देखते हुए**) मै तपोबल से सब कुछ जानता हूँ, राम।

राम—अच्छा, तब तो तुम यह भी जानते होगे कि मै यहाँ क्यो आया हूँ!

शम्बूक—हाँ, आर्य, ब्राह्मणो की सत्ता स्थापित बनाये रखने के लिए, मेरा बध करने।

राम—नही, नही, पहले तुमसे अनुरोध करने कि तुम इस मार्ग को छोड दो।

शम्बूक—हाँ, परन्तु यदि मै न छोडूँ? तब तो तुम मेरा वध ही करोगे न?

राम—तब यह करना मेरा कर्तव्य होगा।

शम्बूक—और अपना सकल्प न छोडना मेरा कर्तव्य है। सुनो, राम, मुझे ज्ञात है कि राज्य मे एक ब्राह्मण का पुत्र मरा है। मै यह भी जानता हूँ कि तुम्हारे ब्राह्मण-कुल-गुरु ने इसका कारण मेरी तपस्या बतलाया है, पर इसका यथार्थ कारण तुम्हारे राज्य की ब्राह्मण-सत्ता है। ब्राह्मण यह मानते है कि हम शूद्रो को तप का अधिकार नही है। मैने यह तप इसी मत के खण्डन के लिए किया है। यदि मेरे तप से कोई शूद्र का बालक मरता तो मेरे तप का कुफल हो सकता था, पर ब्राह्मण-बालक मरा इससे यह स्पष्ट हो गया कि वे ही भूल मे है। भगवान् उनको जता देना चाहते है

कि उनके द्वारा उत्पन्न किये हुए किसी भी व्यक्ति पर अत्याचार नही हो सकता। यदि ब्राह्मण एक जन-समुदाय को सदा नीच बनाये रखने का उद्योग करेगे तो हम इसी प्रकार सिर उठावेगे। इससे उन्ही का सहार होगा। वसिष्ठ ने यह तो अपने योगबल से जान लिया कि मेरे तप के कारण ब्राह्मण-पुत्र की मृत्यु हुई, पर उन्होने यह नही जाना कि इस प्रकार की मृत्युओ का निवारण मेरी अकेले की हत्या से न होकर उनके मत के परिवर्तन मे ही सम्भव है। पर, राम, यह विवाद निरर्थक है। मै योगबल के कारण जानता हूँ कि तुमसे इस जन्म मे समाज की अनुचित मर्यादाएँ भी न टूटेगी। तुम्हारा यह जन्म मर्यादाओ की रक्षा के निमित्त हुआ है, तोडने के निमित्त नही। मै अपना सकल्प न छोड़ूँगा, तुम अपना काम करो, इस हत्या के पश्चात् भी मुझे तो मोक्ष ही मिलेगा।

[राम उसका भाषण सुन गहरे सोच में पड़ जाते है। इधर-उधर टहल एक ओर हट लक्ष्मण से कहते है।]

राम—यह सब कैसा रहस्य है, वत्स! मर्यादा का उल्लघन सचमुच ही मेरे लिए असम्भव है। इस शूद्र के कथन मे मै भारी सत्य देखता हूँ। पर, फिर भी इसे इसी प्रकार छोड इस हत्या से विमुख होने मे मुझे ऐसा भास होता है कि मेरा राज्य-कर्तव्य-भग हो रहा है, धर्म की मर्यादा टूट रही है। लक्ष्मण, लक्ष्मण, यह सब क्या है? ताडका की स्त्री-हत्या करना इसलिए कर्तव्य था कि वह दुष्टा थी तथा ऋषियो को कष्ट देती थी, बालि का अधर्म से भी निधन करना इसलिए कर्तव्य था कि वह अधर्मी था, मित्र से उसके वध करने की मै प्रतिज्ञा कर चुका था और इस निःशस्त्र तपस्वी की हत्या? आह! वह इसलिए आवश्यक है कि शूद्र का तपस्या करना प्रचलित धर्म के विरुद्ध है, जिसकी रक्षा का उत्तरदायित्व मैंने ग्रहण किया है।

लक्ष्मण—हाँ, महाराज, ऐसी ही समस्या है।

राम—ओह! आज के समान सकल्प-विकल्प तो हृदय मे कभी नही उठे। न जाने राम के हाथ से अभी क्या-क्या होना बदा है? **(कुछ ठहर-कर)** जो कुछ हो, धर्म की मर्यादा-रक्षा करना मेरा तो कर्तव्य है, चाहे यह तपस्वी हो अथवा नि शस्त्र। यह तपस्या नही छोडना चाहता, अत इसे मारने के अतिरिक्त मेरे लिए और कौन मार्ग है? कोई नही—लक्ष्मण, कोई नही। **(फिर शम्बूक के निकट जाकर)** फिर पूछता हूँ कि तप छोडना तुम्हे स्वीकार नही है?

शम्बूक—कदापि नही।

राम—सोच लो, अच्छी प्रकार विचार लो।

शम्बूक—**(घृणा से मुस्कराकर)** न जाने कितने काल से सोच और विचार लिया है।

राम—**(लंबी साँस लेकर)** अन्तिम निर्णय है?

शम्बूक—अन्तिम, सर्वथा अन्तिम।

राम—**(तलवार निकाल, आगे बढ़, शम्बूक पर प्रहार करते हुए)** आह! लक्ष्मण, आह! लक्ष्मण, यह कैसी विडम्बना है? यह कैसा कर्तव्य है?

यवनिका-पतन

पाँचवाँ अंक

पहला दृश्य

स्थान—राम के प्रासाद की दालान

समय—तीसरा पहर

[दालान वही है जो चौथे अक के चौथे दृश्य में थी। राम और वसिष्ठ खड़े हुए बातें कर रहे हैं।]

वसिष्ठ—तब तो देव-ऋण से उऋण होना सम्भव नही दिखता, राम।

राम—जो कुछ भी हो, भगवन्, यदि बिना विवाह किये यज्ञ होना सम्भव नही है, तो मुझे नरक मे पडने दीजिए। मनुष्य पर जो देवता, ऋषि, पितृ और मनुष्य इस प्रकार के चार ऋण रहते हैं, उनमे से विद्याध्ययन द्वारा ऋषि और जन-सेवा द्वारा मनुष्य-ऋण से तो मुक्त होने का मैंने प्रयत्न किया ही है। अब यदि बिना पुत्र के पितृ-ऋण और बिना यज्ञ के देव-ऋण से मै मुक्त नही हो सकता तो मुझे नरक मे ही पडने दीजिए, देव।

वसिष्ठ—धन्य हो, राम, धन्य हो। तुम्हारा मैथिली पँर सत्य प्रेम है। मैंने शास्त्र को देख लिया है। वैदेही की सुवर्ण मूर्ति के सग तुम्हारा यज्ञ होगा। शास्त्र की मर्यादा इसमे भग नही होती। एक पत्नीव्रत का जाज्वल्यमान उदाहरण भी तुम छोड जाओगे। मै देखता था कि कहाँ तक तुम अपनी टेक पर रह सकते हो। हिमालय से ले समुद्र-पर्यन्त तुम्हारे राज्य की विजय-पताका अश्वमेध-यज्ञ मे उड सकेगी। चलो, आज ही शुभ मुहूर्त्त है। आज से ही यज्ञ की तैयारी का आरम्भ किया जाय।

राम—(**गद्‌गद होकर**) आप सदृश कुल-गुरु को पाकर मेरा कौन-सा मनोरथ विफल रह सकता है, प्रभो ?

[दोनों का प्रस्थान। परदा उठता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान—वाल्मीकि का आश्रम

समय—प्रात काल

[छोटी-छोटी कई कुटियाँ गंगा के किनारे बनी हुई है। इनके चारो ओर फलो के वृक्ष दिखायी देते है जिनपर पुष्प-लताएँ चढ़ी हुई है। वृक्षो पर बन्दर और तोते तथा अनेक प्रकार के पक्षी दिखते है। इधर-उधर कई पालतू मृग और मोर दिखायी देते है। सारा दृश्य प्रातःकाल के प्रकाश से आलोकित है। कुटी के बाहर बीच में यज्ञ-वेदिका है। उसीके निकट सीता और बासन्ती बैठी हुई बातें कर रही है। सीता बहुत क्षीणकाय हो गयी है। हाथों में चूड़ियों के अतिरिक्त और कोई आभूषण नहीं है। वल्कल-बस्त्र पहिने हुए है। बासन्ती की अवस्था सीता से कुछ अधिक है। वह

भी गौर वर्ण है और उसकी वस्त्र-भूषा भी सीता के ही समान है। सीता गा रही है ।]

तुम्हरे बिरह भई गति जौन ।
चित दै सुनहु, राम करुनानिधि ! जानौं कछु पै सकौं कहि हौं न ॥
लोचन-नीर कृपिन के धन ज्यों रहत निरंतर लोचनन-कौन ।
'हा धुनि'-खगी लाज-पिंजरी महँ राखि हिये बड़े बधिक हठि मौन ॥
जेहि बाटिका बसति तहँ खग-मृग तजि तजि भजे पुरातन भौन ।
स्वास-समीर भेट भइ भोरेहुँ तेहि मग पगु न धर्‌यो तिहुँ पौन ॥

सीता—(**गान पूर्ण होने पर**) आज पूरे बारह वर्ष हो गये। बासन्ती, आज ही के दिन लक्ष्मण मुझे भागीरथी के तीर पर छोडकर गये थे। वह सारा दृश्य आज फिर नेत्रो के सम्मुख घूम रहा है। लक्ष्मण कैसे शोक-ग्रस्त थे, आर्यपुत्र के वियोग का भय मेरे हृदय को कैसा विदीर्ण कर रहा था, बार-बार मन में यह उठता था कि मै उनके बिना प्राणो को कैसे रख सकूँगी, पर, सखि, बारह वर्ष हो चुके और ये अधम प्राण शरीर को अब भी नही छोडते। लका में तो आर्यपुत्र के मिलने की आशा पर प्राण अवलम्बित थे, पर यहाँ तो वह आशा भी नही है। सचमुच मनुष्य सारे कष्टो को सहन कर लेता है।

बासन्ती—तब यदि उनके मिलने की आशा अवलम्ब थी तो अब उनके चिन्ह ये कुश-लव अवलब नही है ? दोनो बालक कैसे है ! रघुनाथजी के सदृश ही रूप, उन्हीके सदृश गुण, सब कुछ उन्ही-सा तो है ।

सीता—पर, न जाने, बासन्ती, इन पुत्रो के भाग्य में क्या बदा है ? चक्रवर्ती राजा के पुत्र होकर ये वन मे उत्पन्न हुए, आश्रम मे इनका लालन हुआ और भिक्षान्न से पालन।

बासन्ती—इसकी चिन्ता न करो, सीता, सुना नही कि तुम्हारी ही सुवर्ण-मूर्ति के सग महाराज यज्ञ करेगे ? अभी भी वे क्या तुम्हे भूले है, वैदेही ?

सीता—यह तो मै जानती हूँ, बासन्ती, वे मुझे क्षणमात्र को भी नही भूल सकते। मै क्या उनके हृदय से परिचित नही हूँ ? अयोध्या मे, वन जाने के पूर्व और वन से लौट कर वे मुझे जिस प्रेम से रखते थे, वह क्या यह शरीर रहते मुझे विस्मृत हो सकता है ? वन मे तेरह वर्ष तक उन्होने जिस प्रकार मुझे रखा वह स्मृति तो मेरी अटूट निधि है। अभी भी आठो पहर और चौसठो घडी मै ही उनके हृदय में निवास करती होऊँगी, पर इन बालको को तो वे तभी ग्रहण करेगे जब उनके कर्तव्य मे बाधा न पहुँचेगी।

बासन्ती—देखो, सखि, दोनो बालक महर्षि वाल्मीकि के सग यज्ञ में अयोध्या गये ही है। ज्ञात नही, क्यो बार-बार मेरे हृदय मे उठता है कि इस यज्ञ मे कोई न कोई अद्‌भुत घटना अवश्य घटित होगी। अयोध्या में भी यह स्पष्ट हो जायगा कि ये कुश-लव रघुनाथजी के ही पुत्र है।

[वाल्मीकि का प्रवेश। वाल्मीकि अत्यन्त वृद्ध है। शरीर दुर्बल, किन्तु ऊँचा है। वर्ण साँवला और छोटी-छोटी श्वेत रंग की जटा तथा लम्बी दाढ़ी है। वस्त्र वल्कल के है। वाल्मीकि को देख सीता और बासन्ती दोनो खड़ी हो प्रणाम करती है।]

वाल्मीकि—(**आशीर्वाद दे, सीता से**) तेरे सारे दुखो की समाप्ति का समय आ गया, पुत्री, राम के और तेरे त्याग ने सारे देश की प्रजा का हृदय द्रवी-भूत कर दिया। जो प्रजा तेरे सम्बन्ध मे अपवाद लिए बैठी थी, वही तेरे इन बारह वर्षो का जीवन-वृत्तान्त सुन, कुश और लव को ठीक राम के अनुरूप देख, अब यह चाहती है कि राम तेरी सुवर्ण-प्रतिमा के

संग नही किन्तु प्रत्यक्ष तेरे सग बैठकर यज्ञ करे। मै कुश और लव को अयोध्या मे ही छोडकर अभी वहाँ से लौट रहा हूँ। जिस मार्ग से वे बालक मेरी रामायण का गान करते हुए निकलते है, सहस्रो का जन-समुदाय इकट्ठा हो जाता है। राजभवन मे भी उन्होने राम आदि को रामायण गाकर सुनायी है। अवध की प्रजा के झुण्डो के झुण्डो ने और देश-देश के माण्डलीक राजाओ ने, जो यज्ञ मे अपनी प्रजा के मुख्य-मुख्य जनो के सग आये है, अपनी प्रजा-जनो के सहित राम के पास जा-जाकर तेरे ग्रहण करने का अनुरोध किया है। हिमालय से समुद्र-पर्यन्त सारे देश के मनुष्य राम के सग तेरे दर्शन चाहते है, एक स्वर से अयोध्या मे यही ध्वनि निकल रही है। राम ने भी तुझे सहर्ष ग्रहण करना स्वीकार किया है और राजगुरु वसिष्ठ ने भी तेरे ग्रहण करने की अनुमति दे दी है। इसी कारण यज्ञारम्भ का मुहूर्त्त आगे बढा दिया गया है। यज्ञ-शाला की पुण्य-भूमि मे ही राम तुझे ग्रहण करेंगे। तुझे मेरे सग अभी अयोध्या चलना है, पुत्री।

सीता—(**गद्गद होकर**) प्रभो, क्या मै जीवित हूँ? क्या जीवित अवस्था मे, उसी शरीर के रहते, उन्ही कानो से यह सम्वाद सुन रही हूँ! भगवन्, यह सब क्या सम्भव है? क्या मुझ मन्दभागिनी के भी दिन फिरे हैं? मेरे लिए भी क्या सुदिन आया है?

वाल्मीकि—हाँ, सतियो की आदर्श, पातिव्रत की मूर्तिवन्त मूर्ति, यह सब सत्य है। चल मेरे सग और राम को अपने पुण्यमय दर्शन दे तथा उनके पुण्यमय दर्शन कर। स्वय राम का रथ तेरे लिए आया है।

बासन्ती—बधाई है, सखि, बधाई है, इस अभूतपूर्व दिवस, इस शुभ तिथि और इस पुण्य काल के लिए।

[तीनो का प्रस्थान। दृश्य बदलता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान—अयोध्या में सरयू-तट पर अश्वमेध-यज्ञ-शाला

समय—तीसरा पहर

[चारों ओर चन्दन के स्तंभ है। बीच में यज्ञवेदी बनी हुई है और इसके चारो ओर बैठने के स्थान बने है। यज्ञशाला बन्दनवार, पताका आदि से सजायी गयी है। आकाश बादलो से आच्छादित है। कभी-कभी बादलो की गरज सुन पड़ती है और बिजली भी चमक जाती है। राम और लक्ष्मण का प्रवेश।]

राम—अभी तो कुछ विलम्ब है, लक्ष्मण ?

लक्ष्मण—कुछ विलम्ब तो अवश्य है, पर बहुत नही, महाराज, यज्ञ-शाला का द्वार अभी नही खुला है। बाहर तो अपार जन-समुदाय है। द्वार खुलते ही सब भीतर आ जावेगे। महर्षि वाल्मीकि का रथ आते ही द्वार खुल जायगा।

राम—बारह वर्ष बीत गये, लक्ष्मण, पर यह थोडा-सा समय बीतना कठिन हो रहा है।

लक्ष्मण—जब किसी भी कार्य के पूर्ण होने मे थोडा-सा समय शेष रहता है तब उसका व्यतीत होना बडा कठिन हो जाता है।

राम—देखो, वत्स, अन्त मे वही हुआ न जो मैंने कहा था। सारे देश की प्रजा के भावो मे परिवर्तन हो गया। उस समय यदि वैदेही को न त्यागा होता तो यह सम्भव नही था। यह लोकमत बडी विलक्षण वस्तु है। अभी भी मै जानकी को ग्रहण करने के पूर्व उससे शुद्धता की परीक्षा देने के लिए कहूँगा।

लक्ष्मण—(**आश्चर्य से**) पुन परीक्षा, महाराज ?

राम—हाँ, लक्ष्मण, जिससे यदि थोडा-बहुत सन्देह लोगो के हृदय मे रह गया हो तो वह भी दूर हो जावे। सन्देह के अवशेष का अवशेष भी बडा भयकर होता है। अग्नि-कण के सदृश अथवा मेघ के छोटे-से खण्ड के समान उसे फैलने मे विलम्ब नही लगता। अब तो मुझे विश्वास हो गया है कि मैथिली के लिए उसके अद्भुत सयम के कारण किसी प्रकार की भी परीक्षा दे देना बाएँ हाथ का खेल है। (**पृथ्वी कॉपती है। आश्चर्य से**) है ! यह कप कैसा ! क्या भूकप है ?

लक्ष्मण—(**कुछ रुककर, इधर-उधर देख**) हाँ, महाराज, भूकम्प-सा ही जान पडता है।

राम—हाँ, हाँ, (**यज्ञशाला के कॉपते हुए स्तंभों को देखकर**) यह देखो न, यज्ञशाला के स्तभ कॉप रहे है। (**यज्ञशाला की कॉपती हुई वेदी को देख कर**) यज्ञवेदी भी कॉप रही है। (**बैठने के कॉपते हुए स्थानो को देखकर**) आसन भी काँप रहे है। (**कंप एकाएक रुक जाता है।**)

लक्ष्मण—परन्तु, अब सब वस्तुएँ पुन स्थिर हो गयी, महाराज। भूकप ही था, अवश्य भूकप।

राम—और यथेष्ट रूप मे हुआ, वत्स।

लक्ष्मण—हिमालय की तराई और उसके निकट के इन स्थानो में, सुना जाता है कि अनेक बार भूकप होते हैं।

[**नेपथ्य में कोलाहल होता है।**]

राम—लो, यज्ञशाला का द्वार खुल गया। महर्षि वाल्मीकि आ गये होंगे, लोग भीतर आ रहे है।

[वसिष्ठ, भरत, शत्रुघ्न, विभीषण, सुग्रीव, अंगद, हनुमान, जाम-वन्त, ऋषि, राजा, राज-कर्मचारी तथा प्रजा-जनो आदि का प्रवेश। राम और लक्ष्मण सबका स्वागत करते है। यज्ञवेदी के दक्षिण ओर ऋषि, वाम ओर नरेश तथा सामने प्रजा बैठती है। वेदी के निकट ही राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और वसिष्ठ बैठते है। प्रतिहारी का प्रवेश।]

प्रतिहारी—(अभिवादन कर) महर्षि वाल्मीकि महारानी और राजकुमारो के सग मडप मे है। महर्षि ने कहा है कि जब सब लोग बैठ जायँ और महर्षि वसिष्ठ आज्ञा दे तब हमे सूचना देना, हम लोग भी आ जावेगे।

वसिष्ठ—(चारों ओर देखकर) हाँ, सब लोग यथास्थान बैठ गये है। महर्षि वाल्मीकि को मै ही चलकर लाता हूँ।

[वसिष्ठ का प्रस्थान और वाल्मीकि, सीता तथा कुश-लव के संग पुनः प्रवेश। सीता अपने वल्कल-वस्त्रो में ही अवनत मुख से आती है। कुश-लव ब्रह्मचारियो के वेश में है और रामायण गा रहे है। सीता का क्षीण शरीर और वेश देख राम सिर झुका लेते है। लक्ष्मण आदि अनेक लोगो के नेत्रो से अश्रुधारा बह चलती है।]

कुश-लव—

मंजु विलोचन मोचत बारी। बोली देख राम महतारी।
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सासु-ससुर-परिजनहि पियारी।
मैं पुनि पुत्र-बधू प्रिय पाई। रूप-राशि गुण सील सुहाई।
नयन-पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेहु प्रान जानकिहिं लाई।
पलँग पीठ तजि गोद हिडोरा। सिय न दीन्ह पग अवनि कठोरा।
जिवन मूरि जिमि जुगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ।
बन हित कोल किरात किसोरी। रची विरचि विषय सुख भोरी।
पाहन कृमि जिमि कठिन स्वभाऊ। तिनहि कलेस न कानन काऊ।

कै तापस तिय कानन जोगू। जिन तप हेतु तजा सब भोगू।
सिय बन बसहि तात केहि भाँती। चित्र लिखे कपि देखि डराती।

[कुछ देर पश्चात् वाल्मीकि के सकेत से कुश-लव गान बन्द कर एक ओर बैठ जाते है। वाल्मीकि कहते है।]

वाल्मीकि—राम-राज्य के निवासियो! आप लोगो की इच्छानुसार मैं इस सती-शिरोमणि भगवती सीता देवी को पुन आपकी राजधानी मे ले आया हूँ। भारतवर्ष मे ही क्या सारे ससार में आज तक किसीका ऐसा उज्ज्वल और कलक-रहित चरित्र नही रहा है जैसा महारानी सीता का है। रावण के सदृश पराक्रमी राजा के यहाँ असहाय रहने पर भी इन्होने अपने सतीत्व की रक्षा की। अपनी शुद्धता का प्रमाण देने, अग्नि में प्रवेश करने के लिए भी सहर्ष प्रस्तुत हो गयी। इतने पर भी जब आप लोगो का विश्वास नही हुआ, तब पूरे एक युग तक इन्होने वन में कठिन तप किया। ये तो आजन्म तप करती, परन्तु आप ही के अनुरोध से पुन अयोध्या मे आयी है। कहिए, आप अपने राजा को अनुमति देते है कि वे कृतकार्य राजा पुन अपनी शुद्ध और अद्वितीय अर्द्धांगिनी को ग्रहण कर पूर्णांग एव धन्य हो?

[जोर से "अवश्य ग्रहण करें", "अवश्य ग्रहण करें" शब्द होते है।]

वसिष्ठ—राम, वैदेही को पुन ग्रहण कर अपना जन्म सफल करो।

राम—(गद्गद कण्ठ से) महर्षियो! नरेशो! और बन्धुओ! मुझे वैदेही के चरित्र पर कभी सन्देह नही था, सर्व-साधारण के विश्वासार्थ ही मैने लका मे इनकी परीक्षा ली थी और यहाँ आने के पश्चात् भी प्रजा के रजनार्थ ही मैने इनका त्याग किया था, क्योकि मेरा यह दृढ विश्वास है कि जो राजा प्रजा की इच्छानुकूल अपने कार्य नही करता वह

कर्तव्य-च्युत है और नरक का अधिकारी होता है। कई दिनो से आज मुझे यह देखकर असीम आनन्द हो रहा था कि देश की सारी प्रजा एक स्वर से मुझसे पुन मैथिली के ग्रहण करने का अनुरोध कर रही है। इस अनुरोध की उत्कटता इस समय और स्पष्ट हो गयी, फिर भी यह और उत्तम होगा यदि आप सबके सम्मुख एक बार पुन मैथिली अपनी शुद्धता का कोई न कोई प्रमाण दे देवे।

सीता—(**दृढता से**) अभी भी मेरी शुद्धता के प्रमाण की आवश्यकता है, आर्यपुत्र? (**कुछ रुककर**) आह! आह! (**फिर कुछ ठहर पृथ्वी को सम्बोधितकर**) अब तो सहन नही होता, जननी,) **फिर कुछ रुककर आर्त स्वर में**) यदि मैने जीवन मे कभी भी मनसा, वाचा और कर्मणा किसी पर-पुरुष का चिन्तन तक न किया हो तो तू फट जा, माँ, और अब तो मुझे अपनी गोद मे ही स्थान दे दे।

[ज़ोर से भूकम्प होता है। सीता के सम्मुख पृथ्वी फटती है और सीता उसमें समा जाती है। पृथ्वी फिर जैसी की तैसी हो जाती है।]

राम—वैदेही, वैदेही, यह क्या! यह क्या!

उपस्थित जन-समुदाय—है, है, है, है! भूकम्प! भूकम्प!

[कोलाहल और हाहाकार होता है। परदा गिरता है।]

चौथा दृश्य

स्थान—अयोध्या का मार्ग

समय—प्रात काल

[वही मार्ग है जो पहले अंक के दूसरे दृश्य में था। चार पुरवासियों का प्रवेश।]

एक—राम-राज्य को अनेक वर्ष बीत गये, बन्धुओ।

दूसरा—अनेक।

पहला—परन्तु, सीता देवी के पृथ्वी-प्रवेश के पश्चात् वह उत्साह और आनन्द दृष्टिगोचर नही होता।

तीसरा—इसमे सन्देह नही, यद्यपि राम-राज्य वैसा ही सुखद है, तथापि शिथिलता और निस्तेजता-सी छायी रहती है।

चौथा—और यज्ञ मे भी क्या वह आनन्द आया था जिसकी आशा थी?

पहला—सती की महिमा ही अद्भुत होती है। सीता देवी के पश्चात् वह आनद रह ही कैसे सकता था। कभी कहने से पृथ्वी फटती हुई देखना तो दूर रहा, सुना और पढा भी न था।

दूसरा—हॉ, बन्धु, अद्भुत बात हुई। किन्तु, उसके कुछ समय पूर्व भी पृथ्वी कॉपी थी।

तीसरा—उसके पश्चात् तो नही कॉपी। अरे, उनकी आज्ञा से ही पृथ्वी फटी। इसी प्रकार वे अग्नि मे प्रवेश कर जीवित निकल आयी होगी जिसपर हमे विश्वास ही नही होता।

चौथा—राम और सीता दोनो ही अद्भुत निकले। सूर्यवश मे ही क्या ससार मे कही भी ऐसे नर-नारी का वर्णन नही सुना।

पहला—जिन्हे भगवान् का अवतार कहा जाता है, ये, वे है। अवध मे साक्षात् परब्रह्म परमात्मा ने अवतार लिया है और शक्ति ने मिथिला

मे लिया था। एक को हमने अपनी दुर्बुद्धि से खो दिया। उस दिन के पहले भी जब सीता देवी पृथ्वी मे समायी, सबके सन्देह थोडे ही दूर हुए थे।

तीसरा—हाँ, हॉ, राम तो साक्षात् अन्तर्यामी है, सबके हृदय की बात समझते है, इसीलिए उन्होने पुन सीता देवी को शुद्धता का प्रमाण देने के लिए कहा।

चौथा—मै तो अपने ही मन की बात कहता हूँ, मेरे हृदय तक में सन्देह बना था।

पहला—सन्देह बडी बुरी व्याधि है, बन्धु, सीता देवी मरकर ही इसका मूलोच्छेदन कर सकी।

चौथा—सुना है, रघुनाथजी ने भी सारा राज्य अपने और भ्राताओ के पुत्रो मे बॉट दिया है। अब वे भी वाणप्रस्थ लेने की तैयारी कर रहे है।

पहला—अयोध्या के अब वे दिन कदाचित् न लौटेगे।

तीसरा—(कुछ ठहरकर) तो फिर चले न, रघुनाथजी के दर्शन का समय हो गया।

सब—(एक साथ) हाँ, हॉ, चलना चाहिए।

[चारो का प्रस्थान। परदा उठता है।]

पाँचवॉ दृश्य

स्थान—राम के प्रासाद की दालान

समय—प्रात काल

[वही दालान है जो चौथे अंक के चौथे दृश्य में थी। इतना ही अन्तर है कि दाहनी ओर एक खिडकी बना दी गयी है। राम और लक्ष्मण खड़े हुए है। राम दाहनी ओर की खिड़की में से बाहर की ओर देख रहे हैं। बाल श्वेत हो गये है और मुखो पर झुरियाँ दिखायी देती है। दोनो वृद्ध दिखते है।]

राम—देखते हो लक्ष्मण, कितनी भीड जमा है। नित्यप्रति यह भीड बढती ही जाती है।

लक्ष्मण—कई लोगो का व्रत है, महाराज, जब तक प्रात काल वे आप के दर्शन नही कर लेते तब तक भोजन नही करते।

राम—हॉ, वत्स, पहले मै झूठा था। वैदेही को अत्यधिक चाहता था, यही मेरा दोष था। इसी कारण प्रजा समझती थी कि मैने झूठ फैलाया है कि वह अपनी शुद्धता का प्रमाण देने अग्नि मे प्रवेश करने के लिए भी प्रस्तुत थी। अब मै परब्रह्म परमात्मा का अवतार हो गया हूँ, क्योकि प्रजा की इच्छा के अनुसार मैने सब कुछ किया, अपने सर्वस्व की आहुति दे दी। यह मनुष्य-हृदय ही विलक्षण वस्तु है!

लक्ष्मण—इसमे सन्देह नही महाराज, आप अपना सर्वस्व खोकर ही यह पद पा सके।

राम—पर, लक्ष्मण, मेरे हृदय को फिर भी सुख नही है, वैदेही के स्मरण की भभकती हुई अग्नि तथा जो पृथ्वी मेरे देखते-देखते उसे निगल गयी उसी पृथ्वी की जो मुझे रक्षा करनी पड रही है, यह मेरी कृति, सदा मेरे हृदय को जलाया करती है। अब तो राज्य भी बॉट दिया है, वत्स, अब जीवित रहने की इच्छा नही है, इस जन्म मे मुझे सुख न मिल सकेगा।

[प्रतिहारी का प्रवेश।]

प्रतिहारी—(**अभिवादन कर**) श्रीमान्, एक मुनि आये है, अपने को अतिबल का दूत बतलाते है; महाराज से भेट करना चाहते है।

राम—उन्हे आदरपूर्वक भीतर ले आओ।

[**प्रतिहारी का प्रस्थान। मुनि के संग फिर प्रवेश। मुनि को छोड़ फिर प्रस्थान। राम और लक्ष्मण मुनि को प्रणाम करते है और वे आशीर्वाद में केवल हाथ उठा देते हैं।**]

मुनि—राम, मुझे एकान्त मे आपसे बातचीत करना है।

राम—जो आज्ञा, प्रभो।

मुनि—परन्तु, इसके पूर्व आपको एक प्रतिज्ञा करनी होगी।

राम—वह क्या, भगवन्?

मुनि—यदि उस वार्तालाप मे कोई आवेगा तो उसका आपको वध करना होगा। मै दूर, अत्यन्त दूर से आया हूँ। मेरी यह याचना, आशा है, आप अवश्य पूर्ण करेंगे, आपके वश मे किसी याचक को कभी विमुख कर नही लौटाया गया।

राम—परन्तु, नाथ, यह प्रतिज्ञा तो बडी भयानक प्रतिज्ञा है।

[**मुनि राम के कान मे धीरे-धीरे कुछ कहते है।**]

राम—अच्छी बात है। ऐसा ही हो, देव। पधारिए भीतर। (**लक्ष्मण से**) लक्ष्मण, तुम्ही बाहर चले जाओ, देखते रहो, मेरे कक्ष मे कोई न आवे।

लक्ष्मण—जो आज्ञा।

[**राम पुनः खिड़की से बाहर की ओर देख, हाथ जोड़ प्रणाम करते है। फिर वे आगन्तुक मुनि के संग एक ओर तथा लक्ष्मण दूसरी ओर जाते है। परदा गिरता है।**]

छठवाँ दृश्य

स्थान—अयोध्या का मार्ग

समय—तीसरा पहर

[वही मार्ग है जो पहले अंक के दूसरे दृश्य में था। बादलों की गरज सुन पड़ती है और रह-रहकर बिजली चमकती है। वायु के वेग से चलने के कारण उसका शब्द भी सुनायी देता है। एक नगरवासी का एक ओर से और कई का दूसरी ओर से दौड़ते हुए प्रवेश। वायु के वेग के कारण उनके वस्त्र उड़ रहे हैं।]

पहला—कहाँ जा रहे हो, बन्धुओ, कहाँ जा रहे हो ?

कई व्यक्ति—ड्योढी पर, ड्योढी पर।

पहला—किस लिए ?

कई व्यक्ति—तुमने नही सुना, नगर मे फैल रहा है कि महाराज ने लक्ष्मण को त्याग दिया और उन्होने सरयू मे जाकर योगबल से अपना शरीर । **(गला भर जाता है।)**

दूसरा—**(रुँधे हुए कण्ठ से)** इसीका पता लगाने जा रहे हैं कि क्या यह सच है।

पहला—**(रोते हुए)** मै वही से आया हूँ, सत्य है

[उसकी बात सुन सब रो पड़ते है।]

एक अन्य व्यक्ति—**(रुँधे गले से)** कारण क्या हुआ ?

पहला—हम अवध के लोगो का मन्दभाग्य कारण है, और क्या ?

वही पहलेवाला—फिर भी कोई कारण तो होगा । महाराज को लक्ष्मण अत्यन्त प्रिय थे, प्राणो से अधिक प्रिय थे। लक्ष्मण ने उनके लिए क्या नही किया ? चौदह वर्ष माता और पत्नी को छोड वन मे रहे। सदा उनकी आज्ञा का पालन किया। ऐसी-आज्ञा पालन कौन . ।

पहला—पर, इससे क्या, बन्धु, भगवान् रामचन्द्र के लिए तो सर्व-प्रथम उनका कर्तव्य है।

वही—पर, लक्ष्मण को त्याग देने का कर्तव्य कहाँ से आ पहुँचा ?

पहला—(**धीरे-धीरे, रुक-रुककर कहता है**) बात यह हुई कि कोई मुनि महाराज के दर्शनार्थ आये थे। उन्होने महाराज से प्रतिज्ञा करायी थी कि हम दोनो की बातचीत के बीच मे यदि कोई आ गया तो आपको उसका वध करना होगा । महाराज प्रतिज्ञा कर और स्वय लक्ष्मण को द्वार-पाल का काम सौप, क्योकि बडे महत्त्व की बात थी, किसी मनुष्य के प्राण न चले जायँ यह विषय था, मुनि से वार्तालाप करने भीतर गये। इतने मे दुर्वासा आ पहुँचे। उन्हे भी महाराज के दर्शन की इतनी शीघ्रता थी कि उन्होने लक्ष्मण की बात तक न सुनी और कहा कि या तो तत्काल महाराज को मेरे आगमन की सूचना दो या मै सारे वश को शाप देता हूँ। लक्ष्मण को और कोई उपाय न देख भीतर जाना पडा। महाराज की प्रतिज्ञा तो महा-राज की प्रतिज्ञा ही ठहरी। वसिष्ठ बुलाये गये। उन्होने व्यवस्था दी कि बन्धु का त्याग ही वध है, पर महाराज को छोड लक्ष्मण क्यो जीवित रहने लगे, फिर उन्हे तो महाराज की प्रतिज्ञा अक्षरश सत्य करनी थी। उन्होने सरयू पर जाकर योगबल से शरीर त्याग दिया। हाय ! अयोध्या-वासियो का भाग्य फूट गया।

[वह रोने लगता है और सभी के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगती है।

जिस ओर से पहला व्यक्ति आया था उसी ओर से एक व्यक्ति का और दौड़ते हुए प्रवेश ।]

आगन्तुक—(रुँधे गले से) अरे! अरे! और अनर्थ हुआ, और अनर्थ हुआ! उर्मिला देवी ने लक्ष्मण के संग सती होने का निश्चय किया है।

पहला—(गद्गद कण्ठ से) अब अयोध्या पूर्ण श्मशान बनकर ही रहेगी। (और अधिक रोने लगता है।)

एक अन्य व्यक्ति—(रुँधे कण्ठ से) चलो, बन्धुओ, हम सब भी श्मशान को चलें।

कुछ व्यक्ति—(एक साथ) हाँ, वहाँ तो चलना ही है।

एक व्यक्ति—(रुँधे कण्ठ से) संसार में वहीं तक का तो साथ है।

[सबका प्रस्थान। परदा उठता है।]

सातवाँ दृश्य

स्थान—सरयू के तट की श्मशान-भूमि

समय—सन्ध्या

[निकट ही सरयू बह रही है। सरयू के दोनों तटों पर वृक्ष हैं। उस ओर के तट से कुछ दूर बसी हुई अयोध्या दिखायी देती है। अयोध्या के पीछे की ओर छोटी-छोटी पहाड़ियाँ दिख पड़ती हैं। आकाश बादलों से छाया हुआ है। रह-रहकर बिजली चमकती है और बीच-बीच में बादलों की गरज भी सुनायी देती है। वायु वेग से चल रही है और इसका भी शब्द हो

रहा है। इस तट पर पानी के निकट ही लक्ष्मण की चिता है। राम अपने दोनो अनुज और वसिष्ठ आदि के संग शोक से सिर झुकाये हुए चिता के निकट खड़े है। उनके चारों ओर जन-समुदाय है। वायु-वेग के कारण सबके वस्त्र उड़ रहे है। सभी शोक से विह्वल है। इस जन-समुदाय में हाहाकार मचा हुआ है। वाद्य बजता है। अनेक स्त्रियो के संग सौभाग्यवती स्त्री के सदृश शृंगार किये उर्मिला का प्रवेश। उर्मिला आगे बढ़ राम एवं भरत और वसिष्ठ के चरण-स्पर्श कर चिता पर बैठ जाती है। उर्मिला के द्वारा चरण-स्पर्श होते ही राम रो पडते है।]

वसिष्ठ—शोक नही, राम, शोक नही। तुमने तो ससार के सम्मुख मनुष्य-जीवन का ऐसा आदर्श उपस्थित किया है जैसा आज-पर्यन्त किसी ने नही किया। कर्तव्य के लिए तुमने राज्य छोडा, परम प्रिय सती-साध्वी पत्नी का चिरवियोग सहा और अन्त मे प्राणो से प्यारे भ्राता को भी खो दिया। अगणित स्वार्थो को त्याग तुमने प्रजा को कर्तव्य का मार्ग दिखाया है। राम, राम-राज्य के समान राज्य कभी नही हुआ, जिसमे प्रजा को आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक कोई भी क्लेश कभी नही पहुँचा। तुम्हारे इसी कर्तव्य-पालन के कारण हिमालय से ले कन्याकुमारी तक और पूर्व समुद्र से ले पश्चिमी समुद्र तक की सारी पृथ्वी पर एक स्वर से भगवान् के समान तुम्हारा जयघोष हो रहा है, तुम्हारे भ्राताओ का हो रहा है, तुम्हारे वश का हो रहा है। जहाँ तुम जाते हो वहाँ की पृथ्वी पुष्प, चन्दन-चूर्ण और खीलो की वर्षा से ढक जाती है। इतिहास मे तुम्हारा चरित्र सदा दूसरे सूर्य के समान तेजस्विता के सग चमकता हुआ ससार को आलोकित रखेगा। लक्ष्मण शोक के योग्य नही है, राम, उनका यह शरीर, जो नाशवान है, चाहे न रहा हो, परन्तु उनकी कीर्ति सदा के लिए भूमण्डल मे स्थिर रहेगी। राम, तुम्हारा शोक करना शोभा-जनक नही है; तुम शोक करते हो, राम, तुम शोक !

राम—प्रभो, मैने लक्ष्मण के अतिरिक्त किसीके सम्मुख आज तक अपना शोक प्रकट नही किया, परन्तु आज उनके न रहने पर यह शोक प्रकट हो गया। मेरे निज का ससार न रहने से आज यह इस ससार के सामने आ गया है। मेरे सम्बन्ध मे आपने जो कहा वह ठीक हो सकता है, नाथ, परन्तु मैने यह सब स्वय को खोकर पाया है। ताडका की स्त्री-हत्या की ग्लानि अब तक मेरे मन मे है, बालि को अधर्म से मारने की लज्जा से अब तक मेरा हृदय लज्जित है, निःशस्त्र शम्बूक के वध से अब तक मेरा अन्त करण व्यथित है; फिर पिता की मृत्यु का मै ही कारण हूँ, पत्नी को मेरे कारण क्लेश भोगना पडा, अन्त मे इस भ्राता ने भी, कैसे भ्राता ने, प्रभो, जैसा भ्राता आज-पर्यन्त किसीने नही पाया था, मेरे ही कारण अपने प्राण त्याग किये, मेरी कृति के ही फलस्वरूप यह वधू उर्मिला मेरे सम्मुख, मेरे जीवित रहते, सती होने जा रही है। नाथ, मै समझता था कि कर्तव्य-पालन से ससार को सुखी करने के सग मनुष्य स्वय भी सुखी होता है, पर नही, यह मेरा भ्रम ही निकला, मै तो सदा दु ख से ही पीडित रहा, भगवन्।

वसिष्ठ—कर्तव्य-पालन से स्वय को सुख की प्राप्ति होती है, राम, अवश्य होती है और वह सुख अनन्त होता है, पर जब तक कर्म के सुफल और कुफल का प्रभाव हृदय पर पडता है तब तक वह सुख नही मिल सकता। निष्काम कर्म कह देना बहुत सरल है, पर इस स्थिति का अनुभव एक जन्म मे नही, अनेक जन्म के पश्चात् बिरला मनुष्य ही कर सकता है, वही जीवन-मुक्त की अवस्था है; वहाँ द्वन्द्व नही रह जाता, वहाँ मनुष्य स्वय और सकल विश्व मे भिन्नता का नही, किन्तु समानता का अनुभव करता है। जीवन रहते कर्म करना ही पडता है, अत इस जीवन-मुक्त अवस्था मे ऐसे व्यक्ति से विश्व के कल्याणकारी कृत्य आपसे आप होते रहते है और इनको करने मे ही उसे सुख मिल जाता है। पर लो, राम, इस

समय तो इस समय के कर्तव्य का पालन करो। लक्ष्मण के पुत्र यहाँ नही है, अत शास्त्रानुसार ज्येष्ठ अथवा लघु भ्राता ही अग्नि-सस्कार कर सकता है। तुम्हे और शत्रुघ्न को ही यह अधिकार है, अत लो इस समय का कर्तव्य पूर्ण करो।

राम—यह भी करना होगा, भगवन्, यह भी ? पर, नही प्रभो, नही, शत्रुघ्न ही यह करे। अब तो सहा नही जाता, नाथ, असह्य हो चुका। इस क्षीण देह और भग्न-हृदय पर यह अन्तिम चोट थी। **(दोनो हाथो से हृदय को सँभालते हुए)** हृदय मे अत्यन्त पीडा हो रही है, देव, अत्यन्त। **(सामने देख चौंकते हुए)** ठहरिए, ठहरिए; देखिए, देखिए,वह सामने कौन है ? देखिए, प्रभो, वह सामने से कौन मुझे बुला रहा है ? आप कहते हैं न कि कर्तव्य-पालन से अनन्त सुख की प्राप्ति एक जन्म मे न होकर अनेक जन्म मे होती है, आप कहते है न कि कर्म के सुफल और कुफल के प्रभाव का हृदय पर पडना एक जन्म मे नही अनेक जन्म के पश्चात् मिटता है, देखिए, देखिए, वह कहता है कि इस जन्म का मेरा कर्तव्य पूर्ण हो चुका। वह मुझे शीघ्र, शीघ्राति-शीघ्र बुला रहा है। अब मेरा भी यहाँ क्या रह गया है ? अन्तिम अवलब लक्ष्मण भी चले गये, नाथ, मै भी क्यो यह दु सह दु ख सहता रहूँ ? जाता हूँ, जाता हूँ, भगवन्, पति के सग स्त्री ही सती न होगी, भ्राता का शव भी भ्राता के सग ही जलेगा।

[राम दोनो हाथो से हृदय मसोसते हुए नेत्र बन्द कर लेते है। उनका मृत शरीर वसिष्ठ की भुजाओ में गिर पड़ता है। हाहाकार होता है। वर्षा आरम्भ होती है और वायु का वेग बढ़ता है। एकाएक जोर से पृथ्वी काँपने लगती है।]

वसिष्ठ—है ! भूकप ! ! भूकप !

एक मनुष्य—हाँ, भारी, भारी भूकप है।

[सरयू के तटों के वृक्ष जोर से काँपते हैं। उस पार बसी हुई अयोध्या के गृह जोर-जोर से गिरते हैं। श्मशान में खड़े हुए जन-समुदाय मे कोलाहल मचता है। दूर से भी कोलाहल सुन पड़ता है। अनेक व्यक्ति भागते हैं। अनेक भागते हुए व्यक्ति पृथ्वी के काँपने से गिर पड़ते है।]

वसिष्ठ—(राम के शव को लिये हुए ही चिल्लाकर) ठहरो, ठहरो, पहले राजा का अग्नि-सस्कार करना होगा।

एक मनुष्य—(चिल्लाकर) किसका अग्नि-सस्कार कौन करेगा! जान पडता है, सारे अयोध्या के निवासी राजा के सग ही स्वर्गारोहण करेंगे।

[कोलाहल बढ़ता है। पृथ्वी पर अनेक दरारें फटती हैं। उनसे पानी निकलता है। अनेक व्यक्ति उन दरारों में समाते है। राम का शव लिये हुए वसिष्ठ तथा भरत और शत्रुघ्न भी पृथ्वी की एक दरार में समा जाते हैं। इसी प्रकार लक्ष्मण की चिता भी पृथ्वी की एक दरार में समाती है। सरयू के उस ओर अयोध्या की बस्ती के परे की पहाड़ियो से अग्नि और धूम निकलता है। भीषण कोलाहल।]

यवनिका-पतन

उत्तरार्द्ध

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान—गोकुल मे यमुना-तट

समय—उष काल

[पूर्वाकाश में प्रकाश फैल रहा है जिसकी छाया यमुना के नीर में पड़ रही है। किनारे पर सघन वृक्ष है। वृक्षों की एक झुरमुट में बैठ कृष्ण मुरली बजा रहे हैं। कृष्ण लगभग ग्यारह वर्ष के अत्यन्त सुन्दर बालक है। वर्ण साँवला है। कटि के नीचे पीत अधोवस्त्र और गले में उसी प्रकार का उत्तरीय है। लंबे केशो का सामने जूडा बँधा है जिस पर मोर-पंख लगा है। ललाट पर केशर का तिलक है, कानों में गुंज के मकराकृत कुण्डल, गले में गुंज के हार, भुजाओ पर उसीके केयूर और हाथो में उसीके वलय है। गले में पुष्पो की बैजयन्ती माला भी है। राधा का प्रवेश। राधा भी लगभग ग्यारह वर्ष की गौर वर्ण की परम सुन्दर बालिका है। नील रंग

है। मेरी जन्म-भूमि मथुरा है। पर, तुमने कभी मुझे उनका या मथुरा का स्मरण करते देखा ? फिर नन्द, यशोदा और व्रज छोडने मे ही मैं क्यो दु ख करूँ ?

राधा—पर, सखे, वसुदेव और देवकी को तुमने देखा नही, मथुरा तुम गये नही, नन्द-यशोदा की गोद मे खेले हो, व्रज मे लाले-पाले गये हो।

कृष्ण—इससे क्या, राधा ? जिन्होने कभी अपने माता-पिता को नही देखा होता, वे भी यदि सुनते है कि उनके माता-पिता कही है और कष्ट मे है, तो वे माता-पिता की कल्पना और उनके कष्ट के विचार से ही रो देते है। जन्म-भूमि के स्मरणमात्र से उनकी आँखो से आँसुओ की झडी लग जाती है। पर, न जानें क्यो, सखी, मुझे तो कभी रोना आता ही नही। जबसे मुझे सुधि है किसी वस्तु मे भी मुझे इतनी आसक्ति नही जान पडती कि उसे छोडने में मुझे क्लेश हो।

राधा—तुम महा निर्मोही हो, महा निष्ठुर हो, कृष्ण, तुम्हारे हृदय नही, पत्थर है।

कृष्ण—यदि आसक्ति न रहने के कारण मनुष्य हृदयहीन कहा जा सकता है, तो तुम मुझे ऐसा कह सकती हो, पर मै तो अपने को ऐसा नही मानता, राधा। क्या मै हरेक को सुख पहुँचाने का सदा उद्योग नही करता ? मेरी अवस्था का कोई बालक ऐसा करता है ? परन्तु हाँ, इन सब कृत्यो के करने ही मे मुझे सुख मिल जाता है, इनमे मेरी आसक्ति नही है; फल की ओर मेरी दृष्टि ही नही जाती। फिर मै देखता हूँ कि जीवन में कुछ ऐसी घटनाएँ होती है, जो निसर्ग से प्रेरित जान पड़ती है, मनुष्य यदि चाहे तो भी उन्हे नही रोक सकता, कभी-कभी वह रोकने का प्रयत्न करता है और उल्टा दु ख पाता है, एव वह कार्य भी नही रुकता। मेरा मथुरा-गमन भी मुझे ऐसा ही भासता है, अत मैं उसके आडे नही आना चाहता।

राधा—तुम्हारी सारी बाते कभी मेरी समझ मे नही आती, पर हाँ, कुछ-कुछ समझ लेती हूँ। इतना मै जानती हूँ कि तुम हम लोगो पर उतना प्रेम नही करते जितना हम तुम पर करते है।

कृष्ण—यह नही है, राधा, तुम लोग किसी पर अधिक प्रेम करती हो, किसी पर कम और किसी पर सर्वथा नही, वरन् किसी-किसी से शत्रुता भी रखती हो, मुझमे ऐसा नही है, यही अन्तर है। मै सभी पर प्रेम करता हूँ और एकसा।

राधा—**(सिर झुका, कुछ सोच और फिर सिर उठाकर)** अब तो तुम पकड गये, जिन दुष्टो को तुमने मारा उनपर भी प्रेम करते थे ?

कृष्ण—हाँ, उनपर भी।

राधा—**(आश्चर्य से)** जिनको मारा उनपर प्रेम ! कैसी बात करते हो, कन्हैया !

कृष्ण—हाँ, राधा, उनपर भी प्रेम, उनपर भी। वे इतने दुष्ट थे कि अपनी दुष्टता के कारण स्वय दु ख पाते थे। उनका इस जन्म मे सुधार असम्भव था, अत मैने उनका, उनके उस शरीर से उद्धार कर दिया।

राधा—तो तुम्हारे लिए सभी एक-से है, क्यो ? फिर न जाने हम ही लोग तुम पर क्यो प्राण दिये देते है।

कृष्ण—तुम्हारी इस कृति मे भी हानि नही है, राधा, पर ऐसी परिस्थिति मे बिना एक बात के तुम्हे सच्चा सुख कभी न मिलेगा।

राधा—**(उत्कंठा से)** वह क्या, सखा ?

कृष्ण—तुम अपने को ही कृष्ण क्यो नही मान लेती ? पहले अपने को ही कृष्ण मानने का प्रयत्न करो, फिर अपने समान ही सारे विश्व को

मानने लगो तथा भेद-भाव से रहित हो उसीकी सेवा में दत्तचित्त हो जाओ। सेवा मे तो प्रयत्न की आवश्यकता ही न होगी क्योकि भेद-भाव के नाश होते ही जब अपने और अन्य मे समता का अनुभव होने लगेगा तब जिस प्रकार अपनी भलाई मे दत्तचित्त रहना स्वाभाविक होता है उसी प्रकार अन्य की भलाई मे भी दत्तचित्त रहना स्वभाव हो जायगा। और इसके अतिरिक्त अन्य कार्य ही अच्छा न लगेगा।

राधा—(आश्चर्य से) क्या कहा? राधा अपने को कृष्ण मानने लगे और फिर सारे ससार को कृष्ण! तुम क्या अपने को राधा और सारे ससार को राधा मान सकते हो?

कृष्ण—मैं तो अपने को कृष्ण और सारे संसार को कृष्ण मानता हूँ, पर हॉ, यदि मुझे अपने को राधा और सारे ससार को राधा मानने में आनन्द मिले तो मै यह भी मान सकता हूँ। तुम कहती हो न कि तुम्हारे हृदय मे मुझपर अत्यधिक अनुराग है। इसीसे मैंने कहा कि तुम अपने को और सारे विश्व को कृष्ण मान लो।

राधा—(कुछ सोचकर) मुझसे तो ऐसा नही माना जाता।

कृष्ण—जब तक नही माना जाता तब तक दु:ख ही रहेगा।

राधा—पर, कौन-कौन ऐसा मान सकता है?

कृष्ण—बहुत कम लोग; इसीलिए ससार मे अधिक दुखी दिखते है।

राधा—पर, मै मानूँ कैसे, सखा? इसका भी तो उपाय बताओ, मैं कह भी दूँ कि मान लिया तो क्या होता है?

कृष्ण—हाँ, कहने से तो कुछ नही होता, उसका अनुभव करना चाहिए, यह अभ्यास से होगा; एक जन्म के अभ्यास से न होगा तो अनेक जन्म के अभ्यास से सही।

राधा—यह तुम्हे अनुभव होता है ?

कृष्ण—हाँ, होता है।

राधा—कबसे ?

कृष्ण—जबसे मुझे सुधि है।

राधा—मुझे भी सुधि तो बहुत शीघ्र आयी, सखे, पर ऐसा अनुभव नही हुआ।

कृष्ण—औरो से तुम्हे शीघ्र होगा, इसीलिए तो तुमसे प्रयत्न करने को कहता हूँ।

राधा—(कुछ ठहरकर) अच्छा, यह तो जाने दो, यह कहो कब आओगे ?

कृष्ण—कुछ नही कहा जा सकता, कदाचित् कभी न आऊँ।

राधा—(घबराकर) तब तुम्हारे बिना मै प्राण कैसे रखूँगी ?

कृष्ण—(मुस्कराकर) तुमने तो कहा न कि मै निर्मोही हूँ, फिर क्यो ऐसे निष्ठुर पर इतना प्रेम करती हो ?

राधा—यह मेरे हाथ की बात नही है। मै ही क्या, नद बाबा और यशोदा मैया का क्या होगा ? न जाने कितने ब्रजवासी तुम्हारे बिना मर जायँगे, कितनो की रो-रोकर आँखे फूट जायँगी, कितने बिलख-बिलख-कर रोगी हो जायँगे। प्यारे, तुम्हारे बिना यह ब्रज-भूमि मरु-भूमि बन जायगी। तुम तो सबको सुखी करने का उद्योग करते हो, सखा ?

कृष्ण—जहाँ तक मुझसे हो सकता है, वही तक तो।

राधा—फिर ब्रज के लिए यह यत्न न होगा ?

कृष्ण—यह कहाँ कहता हूँ। मै तो यह कहता हूँ कि कदाचित् न लौट सका। समझ लो, वहाँ इससे भी आवश्यक और महत्त्व का कार्य सम्मुख आ गया ?

राधा—तो फिर व्रजवासी मरे ?

कृष्ण—नही, प्रयत्न करो कि ऐसा न हो।

राधा—और फिर भी हुआ तो ?

कृष्ण—पर, मुझे विश्वास है कि तुमने यदि प्रयत्न किया तो यह कभी नही होगा।

राधा—नही, नही, सखा, तुम्हे व्रज लौटना होगा।

कृष्ण—यत्न करूँगा।

राधा—**(आँसू भर कर)** ओहो ! सचमुच तुम बडे निष्ठुर हो, बडे निर्मोही हो। **(कुछ ठहर कर)** अच्छा, एक बार फिर मुरली तो सुना दो। फिर एक बार इस ध्वनि को सुन लूँ, सखा। इन कानो को फिर एक बार इस गूँज से भर लूँ, इस हृदय को फिर एक बार इस तान से पूर्ण कर लूँ, कदाचित् यह अन्तिम बार ही हो।

कृष्ण—यह लो, राधा, यह लो।

[कृष्ण मुरली बजाते है। राधा उनके कन्धे पर सिर लगाकर उनसे टिककर खड़ी होती है। परदा गिरता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान—गोकुल की एक गली

समय—प्रात काल

[छोटे-छोटे झोपड़े दिखायी देते है। एक सकरी-सी गली है। दो गोपों का एक ओर से तथा दो का दूसरी ओर से प्रवेश। वे श्वेत अधोवस्त्र और उत्तरीय धारण किये हैं। गुज के भूषण पहिने है।]

एक—आज चला जायगा, व्रज का सर्वस्व-सुख चला जायगा। महर ने वृद्धावस्था मे ऐसा पुत्र पाया था जैसा व्रज मे कभी किसीने नही पाया। कृष्ण बिना नन्द बाबा और यशोदा मैया कैसे जीवित रहेगी और कैसे जीवित रहेगा यह व्रज, भैया ?

दूसरा—अरे भैया, ऐसा क्यो विचारते हो ? दो ही दिनो मे कृष्ण लौट आयँगे।

पहला—कौन जानता है क्या होगा ? राजा कस दुष्ट है यह तो जग-विख्यात है। पिता को कारागृह मे रखा है। बहन देवकी और बहनोई वसुदेव भी बदी है। सुना नही, कृष्ण को वसुदेव-देवकी का आठवॉ पुत्र ही माना जाता है। राजा का विश्वास है कि वसुदेव-देवकी का आठवॉ पुत्र ही उन्हे मारेगा। कृष्ण को मारने नित नये दुष्ट व्रज मे भेजता था, आज कृष्ण को ही मथुरा बुलाया है। भैया, या तो वह इन्हे मार डालेगा या इन्हे भी कारागृह में रख देगा।

चौथा—क्यो ? कदाचित् कस का विश्वास ही सत्य निकले, कृष्ण यथार्थ मे ही वसुदेव के पुत्र हो और ये ही कस को मार डाले।

पहला—अरे भैया, कहॉ ग्यारह वर्ष के कृष्ण और कहॉ वह महारथी, पराक्रमी राजा।

दूसरा—यह तो न कहो, यही उन्होने कितने पराक्रमी दुष्टो का सहार कर डाला ? क्या पूतना स्त्री होकर भी कम पराक्रमी थी ? शकट,

वत्स, बक, अघ, धेनुक, प्रलम्ब, शखचूड, वृषभ, केशी, व्योम आदि दुष्ट कम पराक्रमी थे? यह बालक बडा अद्भुत है, भैया, बड़ा विलक्षण है!

पहला—(**कुछ ठहरकर सोचते हुए**) यदि यह भी मान ले, तब तो यह प्रमाणित ही हो जायगा कि कृष्ण वसुदेव-देवकी के पुत्र है। फिर वे राजसी महलो मे रहेगे, या हमारे झोपडो मे लौटेगे? किसी भी अवस्था मे व्रज अनाथ हो जायगा।

दूसरा—(**कुछ सोचते हुए**) हाँ भैया, यह तुमने ठीक कहा, यह तो सच है, तब हम क्या करे?

पहला—करने को क्या है, भैया? जिस प्रकार सर्प अपनी मणि को खोकर आजन्म रोता है वैसे ही हम भी इस निधि को खोकर जन्म भर रोएँगे।

चौथा—हाय! हाय! सब कुछ चला जायगा। सचमुच व्रज का सर्वस्व चला जायगा। कृष्ण के एक-एक चरित्र नेत्रो के सम्मुख घूम रहे है। इस अवस्था मे भी उन्होने हमारे कैसे-कैसे उपकार किये? पराक्रमी दुष्टो को मार हमारी रक्षा की, इतना ही नही, भैया, देखो, अपने प्राणों तक को तुच्छ मान काली नाग के गृह में अकेले घुस उसे व्रज से निकाल सदा के लिए यमुना-तट को भय रहित कर दिया। दावानल से बाहर निकाल हमे और हमारे गोधन को बचाया। घोर वृष्टि मे गोवर्धन की कन्दराओ मे लेजा हमारे प्राणो की रक्षा की। हमारी धर्मान्धिता निवारण कर हमारे सच्चे धर्म गो-सेवा और गोवर्धन की ओर हमे प्रवृत्त किया। हमारी सामाजिक कुरीतियो का जब साधारण रीति से अन्त नही होता था, तब हमारी कुमारियो के वस्त्र तक हरण कर उन्हे ऐसा दण्ड दिया कि ये फिर कभी जल मे नग्न न घुसे।

तीसरा—और आनन्द क्या हमे कम दिये ? हर ऋतु मे ही नये-नये प्रमोद होते थे। होली मे कैसा उत्सव होता था ? शरद पूर्णिमा के सुख का तो शब्दो मे वर्णन नही हो सकता; वह नृत्य और सगीत तो स्वर्गीय था, स्वर्गीय। कैसा समा बँधा था ! सभी गोप जो उस रास-मण्डल मे नाचे थे, कृष्णवत् दिखते थे और सभी गोपिये राधा के समान। फिर घर मे अटूट गोरस रहने पर भी दूसरो के आनन्द-हेतु नित्य गोरस की चोरी होती थी और दान माँगा जाता था।

पहला—भैया, गोपराज वृषभान की इच्छा भी पूर्ण न हुई, राधा का विवाह भी वे कृष्ण से अब कदाचित् ही कर सके।

दूसरा—बुरी बात न विचारना ही अच्छा है, यदि कृष्ण लौट आये तो फिर जैसा का तैसा सुख हो जायगा।

पहला—हॉ, यदि किसीको निराशा मे भी आशा दिखे तो आशा मे आनन्दित रहना बुरा नही है।

दूसरा—और यदि दुख ही पाओगे तो क्या कर लोगे ? राजा की आज्ञा के विरुद्ध न नन्द उन्हे व्रज मे रख सकते है और न वृषभान ही, फिर हम लोग कौनसी वस्तु है।

[कई गोपियो का शीघ्रता से प्रवेश।]

पहला—अरे, कहॉ भागी जा रही हो, गोपिकाओ ?

एक गोपी—कृष्ण का रथ रोकने।

दूसरा—जो काम नन्द के साहस के बाहर था, वृषभान की छाती जिसे करने न चली, हम लोग घरो में चाहे फूट-फूटकर रोते रहे, पर राजा के भय से हम जो न कर सके, वह तुम स्त्रियॉ करोगी ! पगली हो पगली।

दूसरी गोपी—यदि तुम पुरुष चूडियाँ पहिन घर मे बैठ जाओ तो क्या हम स्त्रियाँ भी घर मे बैठी रहे ? दोनो तो नही बैठ सकते।

तीसरी—अरे, राजा की इस आज्ञा के विरुद्ध तुम व्रजवासियो ने ही मिलकर यदि विप्लव किया होता तो क्या आज व्रज की यह निधि इस प्रकार लुट जाती ?

चौथी—एक बार की कायरता से जन्म भर रोओगे, जन्म भर।

पाँचवी—देश मे जब पुरुष कायर हो जाते है तब अधिकारी किसी भी अत्याचार पर कटिबद्ध हो सकते है।

दूसरा—(**अन्य गोपो से**) अरे, ये गोपिकाएँ पगली हो गयी है, सर्वथा पगली। चलो, भैया, हम तो अपने घर ही भले।

[गोपियाँ नही सुनती और शीघ्रता से जाती है। गोपो का दूसरी ओर प्रस्थान। परदा उठता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान—गोकुल का मुख्य मार्ग

समय—प्रात काल

[एक-एक खण्ड के छोटे-छोटे गृह है। मार्ग साधारण रूप से चौड़ा है। कृष्ण और बलराम रथ में बैठे हुए आते है। रथ में चार घोड़े जुते है। वह छतरीदार है। उसपर चमडा मढ़ा है और चमड़े पर सुवर्ण और चाँदी। छतरी पर रंगीन चित्रित ध्वज है। रथ धीरे-धीरे चल रहा है। बलराम की अवस्था कृष्ण से कुछ अधिक है। स्वरूप कृष्ण से मिलता है,

पर वर्ण गौर है, वेश-भूषा कृष्ण के समान है। रथ के पीछे की ओर बडा भारी जन-समुदाय है।]

बलराम—(दु:खित स्वर से) कृष्ण, व्रजवासियो का विरह देख मेरी तो छाती फटी जाती है। नन्द बाबा और यशोदा मैया कितनी दुखी थी। हाय ! इस व्रज की एक-एक बात आठो पहर और चौसठो घडी स्मरण आवेगी।

कृष्ण—(मुस्कराते हुए) पर, आर्य, इससे क्या लाभ होगा ? मेरा तो मत है कि जो कुछ सामने आवे उसे करते जाइए और पीछे की बातें भूलते। बहुत करके हम दो दिनो मे लौट ही आवेगे। **(दाहनी ओर देख सारथी से)** अरे सूत, यह देखो, कुछ गोपियाँ दौडी हुई आ रही है। इनकी मुद्रा और चाल से भास होता है कि ये कदाचित् रथ रोकने का प्रयत्न करेगी। रथ जल्दी से बढा दो, नही तो व्यर्थ का बखेडा होगा।

[सारथी रथ की गति तेज़ करता है।]

यवनिका-पतन

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—गोकुल का यमुना-तट

समय—सन्ध्या

[डूबते हुए सूर्य की किरणो में यमुना की धारा चमक रही है। सघन वक्ष हैं। अनेक गोपियें बैठी हुई गा रही हैं। सभी साड़ियाँ पहने और एक-एक वस्त्र वक्षस्थल पर बाँधे हैं। भूषण गुंज के हैं। मस्तक पर टिकली और माँग में सेंदूर तथा पैर में महावर हैं।]

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।
प्रीति पतंग करी दीपक सों, अपनो देह दह्यो।
अलि-सुत प्रीति करी जल-सुत सों, संपति हाथ गह्यो।
सारँग प्रीति करी जु नाद सों, सन्मुख बान सह्यो॥

एक—ससार मे जब प्रीति करके किसीको सुख न हुआ तब हमें कैसे होता, सखि ? बारह वर्ष, पूरे बारह वर्ष बीत गये, दिन बाट देखी, रात

बाट देखी, प्रात काल बाट देखी, सन्ध्या बाट देखी, पर वे न आये, बारह वर्ष में भी न आये।

दूसरी—हाँ सखि, कस मर गया, जरासिंध बारह-बारह बार हार-हार कर लौट गया, पर, उन्हे गोकुल की सुधि लेने का भी अवकाश न मिला।

तीसरी—परन्तु, हम भी तीन कोस मथुरा न जा सकी।

चौथी—हम वहाँ जाकर क्या करती, सखि, और क्या करेगी? मथुरा-निवासी कृष्ण से हमारा क्या सम्बन्ध? हमारा प्रेम तो राजसी कृष्ण से, धनी कृष्ण से, वैभव-शाली कृष्ण से, प्रासादो के निवासी कृष्ण से, रण-विजयी कृष्ण से नही है। हमारा मथुरा से क्या काम, सखि? हम तो मोर-मुकुट, मकराकृत-कुण्डल और गुंजमालवाले उस भोले-भाले कृष्ण को चाहती है, जो गोकुल की इन कुञ्ज-गलियो मे घूम-घूमकर मुरली बजाता था, जो वृन्दावन की लता-कुञ्जो में भटक-भटककर गउएँ चराता था, जो गोकुल की झोपड़ियो मे रहता और गोवर्द्धन की कन्दराओ में विहार करता था। हमे तो अपना निर्धन कृष्ण, गवाँर कृष्ण चाहिए, सखि। वह कृष्ण मथुरा मे कहाँ?

[नेपथ्य में गड़गड़ाहट का शब्द होता है।]

एक—(**जल्दी से**) देखो, सखि, रथ का-सा शब्द हुआ। अरे, कृष्ण तो नही आ गये!

[कई गोपियाँ दौड़कर जाती है, शेष उत्सुकता से खड़ी हो उसी मार्ग की ओर देखती है। कुछ देर में गयी हुई गोपियाँ लौटकर आ जाती है।]

वापस आनेवाली में से एक—नही, सखि, भ्रम था, वह तो शकट था।

[सब फिर बैठ जाती है।]

दूसरी—अब व्रज में गोरस की चोरी नही होती।

तीसरी—हाँ, सखि, और न हमसे कोई दान माँग हमारी दही की मटकी फोडता।

चौथी—न कही कोई दुष्ट ही आता है।

पाँचवीं—हाँ, हॉ, शान्ति है, सखि, पूरी शान्ति।

छठवीं—पर, मृत्यु की-सी शान्ति है, जीवन की नही।

[नेपथ्य में वंशी-ध्वनि के सदृश शब्द होता है।]

एक—अरे, वशी कहाँ बज रही है? देखो तो कही कृष्ण आकर चुपचाप छिपकर वशी तो नही बजा रहे है?

[कुछ गोपियाँ दौडकर इधर-उधर जाती है, कुछ अचम्भित-सी चारो ओर देखती है। गयी हुई गोपियाँ कुछ देर में लौट आती है।]

लौट आनेवाली में से एक—नही, सखि, वायु बाँस मे घुस गयी थी, उससे शब्द हो रहा था।

[फिर सब बैठ जाती हैं।]

दूसरी—सखि, जिस नन्द-भवन में नित नव त्योहार होता रहता था, वह अब श्मशान-सा हो गया है।

तीसरी—अरे, वह तो वृषभान-नन्दिनी के कारण नन्द-यशोदा और वृषभान का शरीर बचा है, नही तो वे कब के पार लग गये होते।

चौथी—वे तीनो ही क्या, यदि राधा की सान्त्वना न होती तो न जाने कितने गोप-गोपी क्षीण हो-होकर मर गये होते और कितने रो-रोकर अन्धे हो गये होते।

पाँचवीं—पर, उन निर्मोही, निष्ठुर कृष्ण को इन सब बातो से क्या प्रयोजन ?

छठवीं—इतने पर भी व्रजवासी उनके पीछे प्राण दिये देते है।

पहली—(**उठते हुए बादल को देख**) अरे, मेघ, तू तो श्याम है, उनसा ही तेरा वर्ण है, समवर्ण वालो मे तो बडी मित्रता रहती है, यहाँ से तू मथुरा भी जाता होगा, यहाँ की स्थिति क्यो नही उन निर्मोही को सुनाता ।

दूसरी—(**यमुना को देख**) तुम भी तो श्याम हो, यमुने, उसी वर्ण की हो, तुम्हारे तट पर भी तो यहाँ उन निष्ठुर ने अनेक क्रीडाएँ की थी, तुम्ही यहाँ का थोडा वृत्तान्त उनसे कह दो; तुम तो वहाँ भी हो, सखि।

तीसरी—पर, इसे थोडे ही उनका वियोग है ? इसके तट पर मथुरा मे भी कोई न कोई क्रीडा नित्य होती होगी। दुखी से दुखी की ही सहानुभूति रहती है, यह तो सुखी है; यह हमारी दशा क्यो उनसे कहने लगी ?

[वायु का एक झोका आता है।]

चौथी—अरी, वायु, तू भी तो स्त्री है, स्त्री के हृदय की व्यथा स्त्री ही जानती है। तेरी तो कही भी रोक-टोक नही है, यहाँ के झोपडो के भीतर भी तू प्रवेश करती है और मथुरा के प्रासादो मे भी जाती है; तू ही दुखी व्रज की अवस्था कृष्ण के पास ले जा।

[एक कोयल बोलती है।]

पहली—तू भी काली है, कोयल, कालो का बडा मधुर शब्द होता है, पर, रूप के समान हृदय भी उनका बडा काला रहता है। न बोल, यहाँ व्रज

मे न बोल। एक ही काले के मधुर शब्दो को सुन-सुनकर व्रज की यह दशा हुई है। हम और कालो के शब्द नही सुनना चाहती। जा, वही मथुरा में बोल, मथुरा मे, जहाँ तेरा समवर्णी रहता है।

[एक भ्रमर आकर गुनगुन करता है।]

दूसरी—यह लो, यह दूसरा काला आ पहुँचा। अरे, इन कालो का कोई भरोसा नही।

[सब गोपियाँ गाती है।]

सखीरी, स्याम सबै इक सार।
मीठे बचन सुहाये बोलत, अंतर जारनहार॥
कोकिल, भँवर, कुरंग, काग इन कपटिन की चटकार।
कमल-नयन मधुपुरी सिधारे, मिटिगो मंगलचार॥
सुनहु सखीरी, दोष न काहू, जो बिधि लिख्यो लिलार।
यह करतूति इन्हैं की नाईं, पूरब बिबिध बिचार॥

[गान पूर्ण होते-होते उनके अश्रुधारा बह निकलती है।]

एक गोपी—कहाँ तक रोये, सखी, कहाँ तक रोये।

दूसरी—अरे, पानी तो वर्षा-ऋतु मे ही बरसता है, पर ये नैन तो—

[फिर सब गाती है।]

सब—सखी, इन नैनन तें घन हारे।
बिनही ऋतु बरसत निसि-बासर,
सदा मिलत दोउ तारे॥
एक—नेह न नैनन को कछू, उपजी बड़ी बलाय।
नीर भरे नित प्रति रहे, तऊ न प्यास बुझाय॥

दूसरी—लाल तिहारे बिरह की, अगिनि अनूप अपार।
सरसै बरसै नीर हू, मिटै न झर हू झार॥

सब—ऊरध साँस समीर तेज अति सुख अनेक द्रुम डारे।
दिसन सदन करि बसे बचन खग दुख पावस के मारे॥
सखी इन०।

[राधा का प्रवेश। राधा की अवस्था अब लगभग तेईस वर्ष की है। इस अवस्था में भी यौवन के सौन्दर्य के स्थान पर क्षीणता ही दिख रही है। मुख पर शोक विराजमान है। राधा को देख गोपियाँ गान बन्द कर खड़ी हो जाती हैं।]

एक—आओ, दुखी व्रज की प्राणाधार राधा, आओ।

दूसरी—पधारो, आतप व्रज की शान्ति, पधारो।

तीसरी—स्वागत, इस मरु-भूमि की नीर, स्वागत।

चौथी—शुभागमन, इस अँधेरी रात्रि की चन्द्रकला, शुभागमन।

पाँचवीं—विराजो, इस करुण-सिन्धु की नौका, विराजो।

राधा—सखियो, तुम फिर रुदन कर रही हो, क्यो? आह! कहाँ तक रोओगी, कहाँ तक रोओगी? बारह वर्ष रोते-रोते बीत गये, तुम्हे कहाँ तक समझाऊँ, सखियो, कहाँ तक समझाऊँ? मै भी बहुत रो चुकी हूँ। दिन और रात रोयी, उषा और सन्ध्या रोयी, ग्रीष्म और वर्षा रोयी, शरद और हेमन्त रोयी, शिशिर और वसन्त रोयी, पर उससे क्षणिक शान्ति मिलने, दग्ध हृदय के वाष्प के नीर-रूप से नेत्रो द्वारा कुछ समय के लिए बह जाने के अतिरिक्त स्थायी शान्ति नही मिली। सहेलियो, कृष्ण ने मुझसे अपने को ही कृष्ण मानने के लिए कहा था, और कहा था, इसके उपरान्त मै सबको ही कृष्ण-रूप मे देख उनकी सेवा मे दत्तचित हो जाऊँ,

पर, बारह वर्ष तक प्रयत्न करने पर भी मै इसमें सफल न हो सकी। आज अपनी और तुम्हारी शान्ति के लिए एक नया उपाय सोचकर आयी हूँ। देखो, आज से मै अपना रूप कृष्ण-सा बनाने का विचार कर रही हूँ। आज से गोप और गोपिकाओ के सग मै नित्य कृष्ण की-सी लीलाएँ करूँगी। देखें, सखि, इससे हम सबो को कैसी शान्ति मिलती है? अच्छा, तुम मुझे कृष्ण मान लो और हम उनकी एक लीला आरम्भ करते है। हम लोगो ने उनकी समस्त लीलाओ पर पद्य रचना कर ही ली है, हम उनकी लीला पद्य मे ही करेगी। इस समय यदि इससे कुछ सन्तोष हुआ तो फिर मै तत्काल कृष्ण का-सा रूप बना लूँगी। समझ लो, मै कृष्ण हूँ और तुमसे गोरस का दान माँगती हूँ। अच्छा मै गाती हूँ, तुम भी आरम्भ करना।

बहुत सी गोपियाँ—अच्छी बात है।

राधा—बहुत दिना तुम बच गयीं, हो, दान हमारौ मारि।
आजु लैहुगो आपनौ, दिन दिन कौ दान सँभारि।
नागरि, दान दै।

एक गोपी—या मारग हम नित गयीं, हो, कबहुँ सुन्यौ नहि कान।
आजु नयी यह होति है, लाला, माँगत गोरस दान।
मोहन, जान दै।

राधा—तुम नवीन अति नागरी हो, नूतन भूषन अंग।
नयौ दान हम माँगहीं, प्यारी, नयौ बन्यौ यह रँग।
नागरि, दान दै।

[गोपियों के निकट बढ़ती है।]

दूसरी गोपी—चंचल नैन निहारिए, हो, अति चचल मृदु बैन।
कर नहिं चंचल कीजिए, प्यारे, तजि अंचल चंचल नैन।
मोहन, जान दै।

राधा—उर आनँद अति ही बढ़्यो, हो, सुफल भये दोउ नैन।
ललित बचन समुझति भई, प्यारी, नेति नेति ए बैन।
नागरि, दान दै।

[और निकट बढ़ती है।]

तीसरी गोपी—नैकि दूरि ठाढ़े रहौ, हो, तनक रहौ सकुचाइ।
कहा कियौ मनभाँवते, मेरे अंचल पीक लगाइ।
मौंहन, जान दै।

राधा—कहा भयौ अंचल लगी हो, पीक हमारी जाइ।
याके बदलै ग्वालिनी, मेरे नैनन पीक लगाइ।
नागरि, दान दै।

चौथी गोपी—(भौंहें चढ़ाकर)
सूधे बचनन माँगिए, हो, लालन, गोरस दान।
भौंहन भेद जनाइकै, लाला, कहत आन की आन।
मौंहन, जान दै।

राधा—(मुस्कराकर)
जैसी हम कछु कहति हैं, हो, ऐसी तुम कहि लेउ।
मन मानै सो कीजिए, पै दान हमारो देउ।
नागरि, दान दै।

पाँचवीं गोपी—(सिर हिलाते हुए)
गोरे श्रीनँदराइजू, हो, गोरी जसुमति माइ।
तुम याही तैं साँवरे, लाला, ऐसे लच्छिन पाइ।
मौंहन, जान दै।

राधा—(हाथ ऊपर उठाकर)

मन मेरो तारन बसै, हो, औ अंजन की रेख।
चोखो प्रीति निबाहिए, प्यारी, जासौं साँवल भेख।
नागरि, दान दै।

छठवीं गोपी—(मुँह बिचकाकर)

ठाले-ठूले फिरत हौ, हो, और कछू नहिं काम।
घाट-बाट रोकत फिरौ, तुम आन न मानत स्याम।
मौहन, जान दै।

राधा—(एक लकड़ी उठाकर लकड़ी से पृथ्वी ठोकते हुए)

यहाँ हमारौ राज है, हो, ब्रज-मंडल सब ठौर।
तुमहि हमारी कुमुदिनी, हम कमल-बदन के भौर।
नागरि, दान दै।

[लकड़ी उठाकर मार्ग रोककर खड़ी होती है।]

सातवीं गोपी—(गिड़गिड़ाकर)

काल बहुरि हम आइ हैं, हो, नव गोरस ले ग्वारि।
नीकी भाँति चुकाइ हैं, मेरे जीवन-प्रान-अधारि।
मौहन, जान दै।

राधा—सुनि गोपी, नवनागरी, हो, हम न करैं बिसवास।
कर कौ अमृत छाँड़िके, को करै काल की आस।
नागरि, दान दै।

[सब गोपी भाग जाती है, एक रहती है।]

रही हुई गोपी—सँग की सखीं सब फिर गईं, हो, सुनि हैं कीरति माय।
प्रीति हिये में राखिए, प्यारे, प्रगट किये रस जाय।
मौंहन, जान दै।

[यह गोपी भी लौटती हुई भागती है। राधा पीछे-पीछे जाने लगती है। परदा गिरता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान—मथुरा मे कृष्ण के प्रासाद की दालान

समय—सन्ध्या

[दालान के पीछे की ओर रँगी हुई भित्ति है। दोनो ओर दो स्तंभ हैं जिनके नीचे कुंभी और ऊपर भरणी है। कृष्ण और बलराम का प्रवेश। कृष्ण की अवस्था लगभग अट्ठाइस वर्ष की और बलराम की उनसे कुछ अधिक है। वेश राजसी है। कृष्ण के पीत रेशमी अधोवस्त्र और बलराम के नील रेशमी अधोवस्त्र और उसी रंग के उत्तरीय है। रत्नजटित कुण्डल, हार, केयूर, वलय और मुद्रिकाएँ धारण किये है। सिर पर किरीट है। लम्बे केश हैं, पर मूँछे-दाढ़ी नहीं है। कृष्ण का स्वरूप ठीक राम के सदृश जान पड़ता है।]

कृष्ण—कस और उसके साथी दुष्टो के निधन से भी शूरसेन देश मे शान्ति न हो सकी। सत्रह वर्ष हो चुके पर प्रति वर्ष जरासिन्ध का आक्रमण होता है। शरद ऋतु आयी कि मगध की सेना पहुँची। तात, मेरे प्रति उसका यह व्यक्तिगत द्वेष है।

बलराम—स्वाभाविक ही है, कृष्ण, तुमने उसके जामात्र कस को मारा है।

कृष्ण—परन्तु, आर्य, मै तो सिंहासन पर भी नही बैठा, महाराज उग्रसेन राज्य के अधिकारी थे और वे ही सिहासनासीन है।

बलराम—इससे क्या ? मथुरेश तो तुम ही कहलाते हो। सब जानते है कि यथार्थ मे अधिकार तुम्हारे हाथ मे है।

कृष्ण—इसका कोई न कोई उपाय सोचना होगा। प्रति वर्ष उसे हराकर देख लिया, पर वह फिर भी चढ़ आता है।

बलराम—मेरा तो स्पष्ट मत है कि मगध पर चढाई कर उस देश को ही जीत लेना चाहिए।

कृष्ण—नही, नही, तात, यह कभी नही हो सकता। आपने इतने बार मुझसे यही कहा और मैंने आपसे निवेदन भी किया कि दूसरे के देश पर जीत के लिए आक्रमण करना नीचता है।

बलराम—फिर प्रति वर्ष की इस मार-काट को बन्द करने का और क्या उपाय है ?

कृष्ण—कोई न कोई अन्य उपाय निकालना होगा।

[उद्धव का प्रवेश। उद्धव गौर वर्ण के सुन्दर युवक हैं। अवस्था कृष्ण से कुछ कम दिखती है, वेश-भूषा कृष्ण के सदृश है।]

कृष्ण—**(उद्धव को देखकर)** अच्छा, तुम आ गये, उद्धव, तुम्हे इसलिए बुलाया है कि तुम कुछ दिनो के लिए व्रज जाओ। मैंने इतने दिनों तक, कम से कम एक बार, वहाँ जाने का विचार किया, पर सत्रह वर्ष हो चुके, यहाँ के राजनैतिक पचडो के कारण निकलना ही नही होता। नद

बाबा, यशोदा मैया, वृषभान नृप, राधा तथा सब गोप-गोपी मेरे वियोग से दुखी होगे। उन्हे सान्त्वना देना और शीघ्र लौट आना।

बलराम—हॉ, हाँ, बन्धु, अवश्य हो आओ।

उद्धव—बहुत अच्छा, मुझसे जहाँ तक होगा, जितना होगा, सान्त्वना देऊँगा, पर यथार्थ मे तो उन्हे आप दोनो के वहॉ जाने से ही सान्त्वना मिलेगी। यदि वे पूछे कि आप वहॉ कब आयँगे तो मै क्या कहूँ?

कृष्ण—यहॉ का सारा वृत्तान्त कह देना। कहना कि मेरी उत्कट इच्छा है कि वहॉ अवश्य आऊँ, पर यहॉ से हट सकूँ तब तो। **(बलराम से)** अच्छा चलिए, आर्य, अभी तो सभा है, वहॉ आज बहुत से आवश्यक कार्य है।

[तीनों का प्रस्थान। परदा उठता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान—गोकुल का यमुना-तट

समय—रात्रि

[चॉदनी छिटकी हुई है जिसमें यमुना का जल चमक रहा है। राधा अपना स्वरूप कृष्ण के सदृश बनाये हुए हैं। अनेक गोप और गोपिकाएँ है। राधा वंशी बजा रही है। गोप-गोपी गाते हुए रास कर रहे है।]

नाचति वृषभानु-कुँवरि, हंस-सुता पुलिन मध्य,
हंस-हंसिनी मयूर मंडली

रूप-धार नंदलाल, मिलवत झप ताल चाल,

गुजत मधुमत्त मधुप, कामिनी-अनी ।।

पदक लाल कंठ-माल, तरणि तिलक झलक भाल,

अवनि फूल बर दुकूल, नासिका मनी।

नील कंचुकी सुदेस, चंपकली ललित केस,

मुकुलित मणि बनज-दाम कटि सुकाछिनी ।।

मर्कत मणि बलय-राव, मुखरित नूपुर-सुभाव,

जावक जुत चरननि नख-चद्रिका घनी।

मंद हास, भ्रुव-बिलास, रास-लास सुख-निबास,

अलग लाग लेति निपुन, राधिका गुनी ।।

[एक गोप के संग उद्धव का प्रवेश। उद्धव को देख नाच-गाना बंद हो जाता है।]

आगन्तुक गोप—(राधिका की ओर संकेतकर, उद्धव से) यही हमारे व्रज के दुखी जीवन की अवलब राधा है। अब हमारे कृष्ण और राधा दोनो ये ही है।

[उद्धव राधा को दंडवत् प्रणाम करते है। राधा उन्हे उठाकर कहती है।]

राधा—है! है! महाराज, आप क्षत्रिय-कुल मे उत्पन्न है, मुझ आभीर बाला को इस प्रकार प्रणाम कैसे करते है! देव, प्रणाम तो मुझे आपको करना चाहिए।

उद्धव—आपको ऐसा प्रणाम मुझे ही क्या स्वय कृष्ण को भी करना चाहिए, देवि। इस व्रज मे आये मुझे अब यथेष्ट समय हो गया है। क्या

नद बाबा, क्या यशोदा मैया और क्या अन्य व्रजवासियो से मैने आपके जिन चरित्रो को सुना है, उनके कारण मै मुक्तकठ से कह सकता हूँ कि आप इस पृथ्वी पर अद्वितीय है। भगवती, यदि आप व्रज मे न होती तो यह व्रज कृष्ण के शोक-समुद्र मे डूब गया होता, कृष्ण की विरह-वृष्टि ने इस व्रज को बहा दिया होता। क्या वृद्ध, क्या युवक, क्या बालक, क्या नर, क्या नारी, सभी को तो आपसे सान्त्वना मिली है, देवि, सभी को। आपको एक दडवत प्रणाम, राधे। अरे, एक क्या अनेक भी यथेष्ट नही है।

राधा—कृष्ण-सखा, मै आपके आगमन का वृत्त सुन चुकी थी, पर मेरा साहस आपसे मिलने का नही होता था। आपको देख सत्रह वर्ष पूर्व का मेरा घाव, जो गत पाँच वर्ष पूर्व तक दिन और रात बहा करता था, कही पुन हरा न हो उठे, इसीका मुझे भय था। मेरी आप क्या प्रशसा करते है, उद्धव? मै पढी नही, लिखी नही, ज्ञान नही जानती, व्रत नही जानती, योग नही जानती, कोई साधना नही जानती। मेरे पास तो एक वस्तु है—केवल एक कृष्ण-बधु, और वह है प्रेम, कृष्ण-प्रेम। उन्हीका एकादश वर्ष का मनोहर स्वरूप, मेरे हृदय मे, विराजित है। उन्हीका मै ध्यान करती हूँ और उन्ही के नाम का जप। बारह वर्ष तक उनके लिए रोती रही, ऐसा रोयी, हरि-सखा, जैसा ससार मे कदाचित् कोई न रोया होगा। जब उससे सान्त्वना न मिली, तब गत पॉच वर्ष से उन्ही के नाना चरित्र करती हुई इस व्रज-मण्डल मे घूमती रहती हूँ। इससे कुछ शान्ति मिली है। अभी भी रोती हूँ, पर उस रुदन और इस रुदन मे अन्तर है। वह दु ख का रुदन था, यह प्रेम का रुदन है। उन्हीके कथनानुसार सर्वत्र उन्हे देखने का उद्योग करती हूँ और उन्हीकी बतायी हुई सबकी सेवा मेरा धर्म, वही मेरा कर्तव्य है। मै भोली-भाली, सीधी-साधी, आभीर-बाला और कुछ नही जानती—और कुछ नही। आज पूर्णिमा थी, अत- कृष्ण ने जैसा रास किया था, वैसा करने का हम लोग प्रयत्न कर रही थी।

उद्धव—तो मै उसके दर्शन से क्यो वंचित रखा गया हूँ, देवि ? क्या मेरे सामने वह रास नही हो सकता ?

राधा—क्यो नही हो सकता, अवश्य हो सकता है। हमारे पास, हमारे प्राणवल्लभ कृष्ण के प्रेम मे कोई लोक-लज्जा नही है, उद्धव। हमारा-उनका शुद्ध, नितान्त शुद्ध प्रेम था, बालको का प्रेम और हो ही कैसा सकता है ? (गोप-गोपिकाओ से) नृत्य-सगीत आरभ करो, मथुरा-पुरी से आये हुए हरि-सखा हम ग्रामीण आभीरो का नृत्य-गान देखना चाहते है।

[पुनः नृत्य-गान प्रारंभ होता है।]

चलहु राधिके सुजान, तेरे हित गुन-निधान,
रास रच्यो कुँवर कान्ह, तट कलिंद-नंदिनी।
नर्तत जुबती समूह, रास-रंग अति कुतूह,
बाजत मुरली रसाल, अति अनदिनी॥
बंसीबट निकट जहाँ, परम रमन रेत तहाँ,
सरस सुखद बहत मलय वायु मंदिनी।
जाती ईषद् बिकास, कानन अतिसय सुबास,
राकानिसि सरद मास, बिमल चंदिनी॥
ब्रजबासी प्रभु निहारि, लोचन भरि घोष नारि,
नख-सिख-सौंदर्य सीम, दुख-निकंदिनी।
बिलसो भुज ग्रीव मेलि, भामिनि सुख-सिधु झेलि,
गोबर्द्धन-धरन-केलि, त्रिजग-बंदिनी॥

उद्धव—(नृत्य-गान पूर्ण होने पर) अद्भुत है यह नृत्य और अद्वितीय

है यह गान। कृष्ण के प्रति आपका विलक्षण प्रेम है। धन्य है आप और धन्य है वे कृष्ण, उपासक और औपास्य दोनो ही धन्य है।

राधा—क्यो उद्धव, कभी कृष्ण भी इस व्रज और यहाँ के निवासियो का स्मरण करते है?

उद्धव—उनके मन मे क्या है, यह कहना तो ... ।

राधा—**(जल्दी से)** ठहरिए, ठहरिए, उद्धव, मै अपने व्रत से पुनः भ्रष्ट हो रही हूँ। इसीलिए आपसे मै मिलती नही थी, मुझे भय लगता था कि आपसे मिलकर कही सत्रह वर्ष का पुराना मेरा घाव फिर न हरा हो जाय। मुझे इससे कोई प्रयोजन नही है कि वे व्रज को स्मरण करते है या नही, उन्हे व्रजवासियो की स्मृति आती है या नही, मेरा प्रेम उनके प्रेम को परिवर्तन मे नही चाहता, मुझे उनको प्रेम करने मे सुख मिलता है, इसीलिए मै उनसे प्रेम करती हूँ, इस आशा पर नही कि वे भी मुझसे प्रेम करे। क्षमा कीजिए, हरि-सखा, मै अब यहाँ नही ठहरूँगी, मुझे बडा भय लग रहा है कि कही मेरा घाव फिर से सर्वथा ही हरा न हो जाय। हाय! सत्रह वर्ष के पश्चात् भी यह दशा! यह घाव अभी भी पूरा नही भरा, पूरा नही भरा!

[राधा का शीघ्रता से प्रस्थान। उद्धव आश्चर्य से देखते है। परदा गिरता है।]

चौथा दृश्य

स्थान—मथुरा-पुरी का एक मार्ग

समय—संध्या

[अनेक खण्डों के भवन है। चौड़ा मार्ग है। चार पुरवासियो का प्रवेश। सब अधोवस्त्र और उत्तरीय एवं सुवर्ण के कुंडल, हार, केयूर, वलय और मुद्रिकाएँ धारण किये है।]

पहला—लो, बन्धु, इस वर्ष दो आक्रमण होगे, जरासिंध का तो हर वर्ष होता ही था, इस बार कालयवन का भी होगा।

दूसरा—यह तो कस के अत्याचार से भी भयानक आपत्ति है, अठारह वर्ष से नित्य की यह मार-काट असह्य है, बन्धु!

तीसरा—कितने जन और कितने धन का सहार हो चुका!

चौथा—कृष्ण और जरासिंध की व्यक्तिगत शत्रुता के कारण प्रजा यह क्लेश पा रही है।

पहला—जरासिंध ने ही कालयवन को भडकाया है।

दूसरा—मगध पर आक्रमण कर हम उसके राज्य को ले ले सो भी नही हो सकता।

तीसरा—कैसे हो? वह कृष्ण के सिद्धान्त के विरुद्ध है।

दूसरा—अरे, वही हो जाता तो अब तक वह कब का नष्ट हो चुका होता। सत्रह बार हमने उसे हराया तो क्या आक्रमण कर हम मगध न जीत लेते?

चौथा—पर, करोगे क्या? उग्रसेन तो नाममात्र के राजा है, सारी सत्ता यथार्थ मे कृष्ण के हाथ मे है।

हला—सचमुच बडी भयानक परिस्थिति है। अच्छा, चलो तो और

थोडा पता लगावे कि कब तक आक्रमण होता है।

[चारों का प्रस्थान। परदा उठता है।]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—कृष्ण के प्रासाद की दालान

समय—प्रात काल

[वही दालान है जो दूसरे अंक के दूसरे दृश्य में थी। विचार-मग्न कृष्ण खड़े है। उद्धव का प्रवेश।]

कृष्ण—(**उद्धव के आगमन की आहट सुन उन्हें देखकर**) अच्छा, तुम व्रज से लौट आये ?

उद्धव—हॉ, अभी-अभी, आ रहा हूँ, यदुनाथ, वहॉ की दशा तो बडी अद्‌भुत और करुण ।

कृष्ण—(**बात काटकर**) चाहे वहाँ की दशा अद्‌भुत हो या करुण, इस समय वहाँ की दशा सुनने का समय नही है। तुमने सुना नही कि इस बार शूरसेन देश पर दो आक्रमण हो रहे है—जरासिंध और कालयवन का।

उद्धव—अभी-अभी सुना है ।

कृष्ण—फिर क्या करना होगा ?

उद्धव—लडना होगा और क्या करना होगा, यदुनाथ।

कृष्ण—(**दृढ़ता-भरे स्वर में**) नही, लडना नही होगा।

उद्धव—(आश्चर्य से) तब क्या करना होगा ?

कृष्ण—देखो, उद्धव, इस युद्ध का इस प्रकार कभी अन्त न होगा। यह अट्ठारहवी बार आक्रमण हुआ है। प्रजा इन नित्य के आक्रमणो से तलमला उठी है। अपार धन और जन का सहार हो चुका है। मैंने कई बार तुमसे कहा ही है कि शूरसेन देश पर जरासिध के आक्रमणो का कारण मेरी व्यक्तिगत शत्रुता है और कुछ नही। उग्रसेन उसके समधी है, उनसे उसकी कोई शत्रुता नही। एक व्यक्ति के कारण नित्य की यह मार-काट होना अनर्थ है। सत्रहवी बार के युद्ध मे उसके मुख्य सहायक हस और डिम्भक मार डाले गये तो वह अट्ठारहवी बार कालयवन को सहायक बनाकर ले आया।

उद्धव—तो मगध पर आक्रमण कीजिए।

कृष्ण—वह तो और भी बुरा है।

उद्धव—तब फिर क्या कीजिएगा ?

कृष्ण—(मुस्कराकर) मैंने इसका उपाय सोच लिया है।

उद्धव—क्या ?

कृष्ण—मै युद्ध नही करूँगा, भागूँगा।

उद्धव—(आश्चर्य से, चौंककर) आप हँसी तो नही कर रहे है !

कृष्ण—नही, मै नितान्त गभीर होकर कह रहा हूँ।

उद्धव—आप युद्ध छोडकर भागेगे, इसका क्या अर्थ ?

कृष्ण—युद्ध छोडकर भागने का अर्थ युद्ध छोडकर भागना ही हो

सकता है, कोष मे एक-एक शब्द का अर्थ देखने से भी इस वाक्य का और कोई अर्थ न निकलेगा।

उद्धव—पर, यदुनाथ, आप युद्ध से भागेगे कैसे?

कृष्ण—दोनो पैरो से, यदि सिर के बल भागा जा सकता हो तो वह और भी अच्छा है। (**हँस देते है।**)

उद्धव—यदुनाथ, यह हँसी की बात नही है, यह बात सुनकर मेरी तो साँस घुट रही है और आपको इसमे भी हँसी सूझती है।

कृष्ण—मै हँसी नही कर रहा हूँ, उद्धव।

उद्धव—(**खीझकर**) पर, युद्ध मे भागना अधर्म है, यदुनाथ।

कृष्ण—क्योकि अब तक लोग उसे अधर्म कहते है।

उद्धव—हॉ, किन्तु ।

कृष्ण—(**बात काटकर**) किन्तु-परन्तु कुछ नही, प्रचलित बातो के विरुद्ध अच्छी बात भी करना लोगो को अधर्म दिखता है। देखो, उद्धव, धर्म का काम लोक-रक्षा है। यदि जरासिंध देश जीतने के लिए युद्ध करने आता होता तो देश की रक्षा करने के निमित्त युद्ध करना अनिवार्य था। इसी प्रकार यदि किसी सद्सिद्धान्त की रक्षा के लिए युद्ध आवश्यक होता तो भी युद्ध करना ही पड़ता, क्योकि स्थायी रूप से लोक-रक्षा सद्सिद्धान्तो की रक्षा से ही हो सकती है, परन्तु जरासिंध केवल मेरे व्यक्तिगत द्वेष के कारण बार-बार आक्रमण करता है। कालयवन को भी वही उकसाकर लाया है। जब तक वह मुझे एक बार नीचा न दिखा लेगा, तब तक यह रक्तपात बन्द न होगा। यदि एक मेरे नीचा देख लेने से इतने जन और धन की रक्षा होती है, तो मेरा नीचा देखना ही धर्म है; अत इस समय युद्ध

करना धर्म नही, पर, देश के जन तथा धन की रक्षा के निमित्त युद्ध से भागना ही धर्म है।

उद्धव—परन्तु, यदुनाथ, इससे लोग आपको कायर कहेगे।

कृष्ण—(**मुस्कराकर**) मुझे लोगो के कल्याण की चिन्ता है या इसकी कि मुझे वे क्या कहेगे ? मै युद्ध मे से भागूँगा, अवश्य भागूँगा। युद्ध-क्षेत्र पर जाकर जरासिध और कालयवन दोनो के सामने से, दोनो की सेनाओ के बीच मे से, भागूँगा, जिससे उन्हे विश्वास हो जाय कि मै ही भागा हूँ, कोई दूसरा नही। फिर मै नि.शस्त्र होकर भागूँगा तथा इतने वेग से भागूँगा कि कोई मुझे पकड भी न सकेगा। मैने द्वारका नामक एक द्वीप का पता लगाया है, वहाँ जाकर बसूँगा। शूरसेन देश की रक्षा का, इस रक्तपात और मार-काट के निवारण का, अपार जन और धन के बचाने का और कोई उपाय नही है।

[कृष्ण का हँसते हुए प्रस्थान। उद्धव कुछ सोचते-सोचते नीचा मस्तक किये पीछे-पीछे जाते है। परदा उठता है।]

छठवाँ दृश्य

स्थान—शूरसेन देश की सीमा पर रणक्षेत्र

समय—प्रात काल

[दूर-दूर तक मैदान दिखायी देता है। एक ओर यादव-सेना और दूसरी ओर आधे भाग में एक प्रकार के वस्त्र पहने और आधे भाग में दूसरे प्रकार के वस्त्र पहने दो सेनाएँ खड़ी है। इन दोनों सेनाओं के सेना-

पतियों की वस्त्र-भूषा सैनिकों से भिन्न प्रकार की है, जिससे वे सेनापति मालूम होते हैं। सैनिकों के कवच और शस्त्र सूर्य की दीप्ति से देदीप्यमान हैं। युद्ध आरम्भ होने के शंख बजते ही हैं। निःशस्त्र कृष्ण का प्रवेश।]

एक सेनापति—(निःशस्त्र कृष्ण को देख आश्चर्य से दूसरे सेनापति से) कालयवन महाराज, यही तो कृष्ण है, यही ?

दूसरा सेनापति—पर, मगधराज, युद्ध के समय यह कैसा वेश है ? आप भूल कर रहे होंगे। कृष्ण इस प्रकार युद्ध में आयेगा ?

पहला—नहीं, नहीं, मैंने एक बार नहीं सत्रह बार इसे देखा है, भूल कदापि नहीं हो सकती।

दूसरा—तब यह हमारी शरण आया है।

पहला—यही समझना चाहिए, और क्या।

[कृष्ण उनके सम्मुख से भागते हैं।]

पहला—(अत्यंत आश्चर्य से) अरे, यह तो भाग रहा है, भाग रहा है !

दूसरा—कहाँ भाग कर जायगा, मैं अभी पीछा करता हूँ। (पीछे दौड़ता है।)

यवनिका-पतन

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—द्वारका-पुरी मे कृष्ण के प्रासाद की दालान

समय—प्रात काल

[दालान वैसी ही है जैसी मथुरा के प्रासाद की थी, पर, रंग भिन्न है। कृष्ण और उद्धव टहल-टहलकर बातें कर रहे है ।]

कृष्ण—देखो, उद्धव, वही हुआ न, जो मैने सोचा था। आज पूरे दो वर्ष हो चुके, शूरसेन देश पर मगध का कोई आक्रमण नही हुआ। काल-यवन का मुचकुद ने सहार भी कर दिया, यह अनायास ही हो गया। अधर्मियो का क्षय कभी-कभी इस प्रकार अनायास ही हो जाता है।

उद्धव—हाँ, यदुनाथ, यही हुआ।

कृष्ण—मेरे अकेले की अकीर्ति से देश का कल्याण हो गया; उस अपार जन और धन का सहार बचा।

उद्धव—पर, अब तो कोई अकीर्ति भी नही रही, द्वारकेश । सभी

यह कहते है कि आपने देश-हित की प्रेरणा से ही ऐसा किया।

कृष्ण—यह प्राय होता है, किस उद्देश से किसने कौनसा काम किया, कभी-कभी चाहे यह प्रकट न हो, पर अधिकतर अन्त मे स्पष्ट हो ही जाता है। पर, कोई कुछ कहे भी तो इसकी मुझे क्या चिन्ता है? मेरी अन्तरात्मा को यह नही कहना चाहिए कि मैंने कोई बुरा काम किया। **(कुछ ठहरकर)** उद्धव, मेरी तो यह इच्छा भी न थी कि मेरे अकेले के कारण इतना जन-समुदाय देश को छोडकर इस द्वीप को बसने को आवे, पर लोग मानते ही नही।

उद्धव—ऊपर से बुरी दिखनेवाली, रण छोडकर भागने की उस कृति से शूरसेन देश मे जो शाति हो गयी उससे प्रजा की आप पर इतनी श्रद्धा बढी है कि शूरसेन देश मे उसे रोकना ही असम्भव हो गया है, यदुनाथ।

कृष्ण—संतोष का विषय इतना ही है कि यहॉ भी प्रजा को कोई कष्ट नही हो रहा है, सब सुविधा से बसते जा रहे है। ज्ञात होता है, कुछ ही समय मे यह देश भी धन-धान्य पूर्ण हो जायगा।

उद्धव—और आपके यहाँ आने पर भी शूरसेन देश की राज्य-व्यवस्था नही बिगडी। मुझे तो केवल व्रजवासियो की चिन्ता रहती है।

कृष्ण—चिन्ता-सोच तो किसी बात के लिए भी निरर्थक है, पर हाँ, व्रज जाने की अभी भी मेरी इच्छा है, समय ही नही मिलता, करूँ क्या? और फिर जब मथुरा से तीन कोस की यात्रा का समय न मिला, तब अब तो बहुत दूर की बात हो गयी; यहॉ तो और अधिक कार्य है। फिर भी जाने का प्रयत्न करूँगा। **(कुछ ठहरकर)** व्रज छोडे लगभग बीस वर्ष होते है, क्यो उद्धव?

उद्धव—हॉं, यदुनाथ, बीस वर्ष। **(कुछ ठहरकर)** एक बात मुझे बहुत काल से आपको कहने की इच्छा है, कहूँ क्या ?

कृष्ण—तुम्हे मै अपना मित्र समझता हूँ, तुम्हे किसी बात के कहने में सकोच क्यो ?

उद्धव—आपकी अवस्था तीस वर्ष के ऊपर हो गयी है, विवाह के सम्बन्ध मे आपने कुछ विचार किया ?

कृष्ण—**(मुस्कराकर)** क्यो नही किया, पिताजी, महाराज उग्रसेन आदि सभी इस सम्बन्ध मे मुझे कई बार कह चुके है।

उद्धव—तब क्या निर्णय किया, द्वारकेश ?

कृष्ण—मै इस झझट से अलग ही रहना चाहता हूँ। तुम जानते हो, जब मनुष्य राज्य, विवाह आदि बधनो से जकड जाता है, तब उसे कर्तव्य-पालन मे उतनी स्वतत्रता नही रहती, इसीलिए मैने राज्य-सिंहासन नही लिया और विवाह भी नही करना चाहता।

उद्धव—परन्तु, आपकी प्रकृति तो ऐसी है कि उसकी स्वतत्रता को ससार मे कोई भी बात अपहरण कर सके, यह मै नही मानता।

कृष्ण—कदाचित् यह ठीक हो, परन्तु फिर भी बधनो से जितनी दूर रहा जा सके उतना ही अच्छा है।

[प्रतिहारी का प्रवेश।]

प्रतिहारी—**(अभिवादन कर)** श्रीमान्, विदर्भ देश से एक ब्राह्मण आये है और श्रीमान् के दर्शन करना चाहते है।

कृष्ण—उन्हे आदरपूर्वक भीतर ले आओ।

[प्रतिहारी का प्रस्थान, एक वृद्ध ब्राह्मण के संग पुनः प्रवेश और उस ब्राह्मण को छोड़ फिर प्रस्थान। कृष्ण और उद्धव ब्राह्मण को प्रणाम करते है और वह आशीर्वाद देता है।]

कृष्ण—कहिए, देव, इतनी दूर इस द्वीप मे पधारने का कैसे कष्ट उठाया ?

ब्राह्मण—मुझे आपकी सेवा मे विदर्भ-कुमारी श्रीमती रुक्मिणी देवी ने कुण्डनपुर से एक पत्र देकर भेजा है, यदुनाथ।

कृष्ण—अच्छा, वे ही न, जिनका विवाह चेदि-देश के राजा शिशुपाल से होनेवाला है ?

ब्राह्मण—हाँ, वे ही, द्वारकेश। किन्तु, यह विवाह उनकी इच्छा के विरुद्ध उनके कुटुबी कर रहे है। उन्होने तो आपके गुणानुवादो को सुन सकल्प कर लिया है कि वे आपको छोड किसी अन्य से विवाह न करेगी। आपसे प्रेम रहने के कारण चेदि-नरेश से विवाह करने की अपेक्षा राज-कुमारी मृत्यु को उत्तम समझती है। उन्होने निश्चय किया है कि यदि आप किसी प्रकार भी उनका पाणिग्रहण न कर सके तो विवाह के पूर्व वे अपने प्राण दे देगी। विवाह के केवल दस दिन शेष है, वे विवाह के दिवस तक आपकी प्रतीक्षा करेगी, यदि आप न पधारे तो उनकी मृत्यु निश्चित है। यह उनका पत्र है, द्वारकाधीश। **(एक पत्र कृष्ण को देता है।)**

कृष्ण—**(पत्र खोल और पढ़कर)** आप आनदपूर्वक ठहरे। भोजन-विश्राम के पश्चात् विदर्भ देश लौटकर राजकुमारी को सूचित कर दें कि मै ठीक समय कुण्डनपुर पहुँच जाऊँगा। **(जोर से)** प्रतिहारी ! प्रतिहारी ! **(प्रतिहारी का प्रवेश और अभिवादन।)** ब्राह्मण-देवता को सुख-पूर्वक ठहराकर भोजन कराओ।

[प्रतिहारी और ब्राह्मण का प्रस्थान।]

उद्धव—आप उनके कुटुम्बियो की इच्छा के विरुद्ध रुक्मिणी देवी से विवाह कैसे करेगे, देव ?

कृष्ण—(**मुस्कराकर**) मै रुक्मिणी का हरण करूँगा, उद्धव।

उद्धव—(**आश्चर्य से**) पर, यदुनाथ, माता, पिता, भ्राता एव कुटुम्बी जनो को अधिकार है कि वे जिससे चाहे कन्या का विवाह करे।

कृष्ण—यह अनुचित अधिकार है, उद्धव। वर-कन्या को जन्मभर परस्पर सग रहना पडता है, उनके भाग्य का इस प्रकार निर्णय करने का बाधवो को कोई अधिकार नही है।

उद्धव—परन्तु, फिर तो समाज की मर्यादा भग हो जायगी, यह तो अधर्म होगा।

कृष्ण—समाज की अनुचित मर्यादा को तोडना ही धर्म है।

उद्धव—और अभी तो आपने यह कहा था कि आपका विचार ही विवाह करने का नही है।

कृष्ण—उस समय मेरे सम्मुख ऐसा कोई प्रसग उपस्थित नही था। कर्तव्य का निर्णय तो समय-समय पर परिस्थिति के अनुसार बदलना ही पडता है। एक बालिका की प्राण-रक्षा का प्रश्न है। पढ लेना, कैसा करुणापूर्ण पत्र है। तो फिर चलो, कुण्डनपुर प्रस्थान के लिए प्रस्तुत हुआ जाय।

[कृष्ण पत्र उद्धव को देते है। दोनों का प्रस्थान। परदा उठता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान—विदर्भ-देश के कुण्डनपुर मे दुर्गा का मदिर

तीसरा दृश्य

स्थान—द्वारकापुरी का एक मार्ग

समय—प्रात काल

[मार्ग के भवन मथुरा के समान ही है। मार्ग भी चौड़ा है। दो पुरवासियो का प्रवेश।]

एक—देखा, बन्धु, इस ससार मे कार्य का बदला किस प्रकार मिलता है। कृष्ण ने यदि किसी की भगिनी का हरण किया था, तो किसीने उनकी भगिनी सुभद्रा का हरण कर लिया।

दूसरा—पर, यह तो उनके मित्र अर्जुन ने किया है। सुना है, यह कृष्ण की अनुमति से हुआ है।

पहला—**(आश्चर्य से)** यह क्या कहते हो! कोई अपनी भगिनी का हरण करावेगा!

दूसरा—कृष्ण जो करे सो थोडा है।

पहला—अच्छा चलो, अभी तो चलकर सेना का रण-प्रस्थान देखे। इस बार इन्द्रप्रस्थ मे घोर सग्राम होगा। बराबरीवालो का विवाह और युद्ध दोनो ही दर्शनीय होते है।

सरा—पर, मुझे तो इस युद्ध मे बडा सन्देह है, कृष्ण यह युद्ध कदापि न होने देगे।

पहला—बलराम रुकनेवाले नही है, उनका क्रोध चरम सीमा को पहुँच गया है, चलो, चलकर देखे तो, चलने में क्या हानि है?

दूसरा—हाँ, हाँ, चलने मे कोई हानि नही, चलो।

[दोनो का प्रस्थान। परदा उठता है।]

चौथा दृश्य

स्थान—द्वारकापुरी मे बलराम के प्रासाद की दालान

समय—सन्ध्या

[दालान तीसरे अंक के पहले दृश्य के समान ही है, पर रंग भिन्न है। क्रोधित बलराम और संग में उद्धव का प्रवेश।]

बलराम—(क्रोध से) पाण्डवो को इतना मद! अर्जुन का इतना साहस! अभी जब कौरवो के हाथ मे सत्ता है तभी इतना मद हो गया, तो राज्य मिलने पर वे न जाने क्या करेंगे। मेरी भगिनी सुभद्रा का हरण, कृष्ण-भगिनी सुभद्रा का हरण, वसुदेव-पुत्री सुभद्रा का हरण! इन्द्रप्रस्थ को यदि मिट्टी मे न मिला दिया और अर्जुन का यदि क्षणमात्र मे वध न कर दिया, तो मेरा नाम बलराम नही।

उद्धव—शात होइए, श्रीमान्, शान्त होइए, पाण्डव अपने किये का फल अवश्य पावेगे, रेवतीपति।

[कृष्ण का प्रवेश।]

कृष्ण—(मुस्कराते हुए) इतना क्रोध, तात, इतना क्रोध! जब मैंने रुक्मिणी का हरण किया था, उस समय आपने मुझपर इतना क्रोध क्यो नही किया? उस समय मुझे बचाने के लिए रुक्मिणी के भ्राता रुक्म से आप क्यो लडे, आर्य? रुक्मिणी भी किसीकी भगिनी थी, किसीकी पुत्री थी।

बलराम——(**क्रोध से**) ज्ञात होता है, कृष्ण, तुम्हारा भी इस षड्यंत्र मे हाथ है। अर्जुन से मित्रता है तो क्या तुम्हारी मित्रता के कारण अर्जुन हमारे कुल का अपमान करेगा, हमारे कुल मे कलक लगाएगा ?

कृष्ण——(**मुस्कराते हुए**) मैने भी क्या किसीके कुल का अपमान किया है ? क्या किसीके कुल मे कलक लगाया है ? अर्जुन ने ठीक वही किया है, जो मैने किया था। यदि अर्जुन का कृत्य निन्दनीय है तो मेरा भी है, यदि अर्जुन दण्ड पाने के योग्य है, तो मै भी हूँ। आप मुझसे भी बडे है और अर्जुन से भी, पहले मेरा सिर काट दीजिए, तब इन्द्रप्रस्थ पर आक्रमण कीजिएगा।

बलराम——(**दुःखित होकर**) कृष्ण, तुम दग्ध पर लवण छिडक रहे हो, तुम दुखी को दुखी कर रहे हो।

कृष्ण——तात, किसी बात के भीतर घुसकर न देखने से ही मनुष्य को दु ख होता है। सुभद्रा जैसी आपकी भगिनी है, वैसी ही मेरी भी तो है, उसके हरण से मै दुखी नही हूँ और आप क्यो है, आर्य ?

बलराम——(**त्यौरी चढ़ाकर**) इसका स्पष्ट उत्तर सुनना चाहते हो ?

कृष्ण——बिना इसके विषय का निपटारा कैसे होगा ?

बलराम——तो स्पष्ट उत्तर यह है कि तुमने भी वैसा ही पाप किया है, इसीसे तुम दुखी नही हो।

कृष्ण——मै तो उसे पाप न मान कर धर्म मानता हूँ, परन्तु आपकी दृष्टि से यदि उसे पाप भी मान लिया जाय तो पाप-कर्म करने पर भी आपने मेरी रक्षा क्यो की ?

[**बलराम चुप रहते है।**]

कृष्ण—मेरे सकोच के कारण आप पूरी बाते स्पष्ट न कहेगे, अच्छा मै ही कहता हूँ, अपना और आपका, दोनो का काम मै ही करता हूँ। सुनिए, आपकी दृष्टि से पाप होते हुए भी आपने मेरे पाप-कर्म मे भी इसलिए सहायता दी कि मै आपका भ्राता हूँ, क्यो ठीक है ?

बलराम—(**ज़ोर से**) हाँ, यह तो है ही।

कृष्ण—रुक्मिणी आपकी भगिनी न थी और उसका हरण आप के भ्राता ने किया था, आपकी दृष्टि से भ्राता का वह कर्म पापमय होने पर भी आपने उस कर्म मे इसलिए सहायता दी कि वह आपके भ्राता ने किया था। सुभद्रा आपकी भगिनी है और उसे हरण करनेवाला एक अन्य व्यक्ति है अत. आप उसे दण्ड देना चाहते है। आर्य, इस भेद-बुद्धि से ही तो दु ख होता है, यही तो स्वार्थ है, यही तो दु ख की जड है। आपकी दृष्टि से यदि किसीने पाप किया है तो आपको उसे दण्ड देने का अवश्य अधिकार है, पर यदि वही पाप दो मनुष्यो ने किया है और उसमे से एक आपका भ्राता है तो आपको अपने भ्राता को भी वही दण्ड देना होगा, जो आप अन्य व्यक्ति को देना चाहते है।

बलराम—यह नीति ससार मे व्यवहार्य्य नही है।

कृष्ण—मेरा तो विश्वास है कि जब तक ससार इस सम नीति का अनुसरण न करेगा, तब तक वह दुखी ही रहेगा। अब हम लोगो के कृत्यो के धर्म-अधर्म की ओर थोडी दृष्टि डालिए। रुक्मिणी के कुटुम्बी उसका विवाह एक ऐसे व्यक्ति के साथ करना चाहते थे, जिसपर उसका प्रेम तो दूर रहा, परन्तु जिसपर उसकी महान् घृणा थी, उसने उससे विवाह करने की अपेक्षा प्राण देने का निश्चय कर लिया था। आप सुभद्रा का विवाह दुर्योधन से करना चाहते थे जिससे वह भी अत्यत घृणा करती थी और वह भी कदाचित् विवाह करने की अपेक्षा प्राण दे देती। मै तो

आजन्म विवाह करना ही नही चाहता था, पर रुक्मिणी का मुझपर प्रेम था और सुभद्रा का अर्जुन पर। मैंने रुक्मिणी के जीवन को सुखी करने का प्रयत्न किया तथा उसपर किये जानेवाले अत्याचारो को रोका और अर्जुन ने सुभद्रा के जीवन को। आपने मुझे सहायता दी और (**मुस्करा-कर**) आपके इस लघु और प्राणो से प्यारे भ्राता ने अर्जुन को। यह सब पुण्य हुआ या पाप ?

बलराम—(**मुस्कराकर**) तुम अद्भुत हो, सचमुच विचित्र हो, कृष्ण। पर, बन्धु, इन सब बातो से समाज की मर्यादा भग होती है।

कृष्ण—समाज की अन्यायपूर्ण मर्यादाओ से समाज को उल्टा क्लेश होता है अत इन्हे भग करना ही होगा। अच्छा, अब सुनिए, भगिनी के विधवा बनाने की बात तो छोडिए और यहाँ के कार्य को सँभालिए, मुझे फिर बाहर जाना है।

बलराम—अब कहाँ जाओगे ?

कृष्ण—भौमासुर पर तत्काल आक्रमण करना होगा।

उद्धव—(**आश्चर्य से**) आप तो किसीके देश पर आक्रमण करने के विरुद्ध थे न !

बलराम—हाँ, इसी कारण देश छोड दिया और मगध पर आक्रमण न किया।

कृष्ण—पर, यह आक्रमण ही धर्म है।

उद्धव—यह कैसे ?

बलराम—इसमे भी कोई गूढ रहस्य होगा।

कृष्ण—मै उसका देश जीतने के लिए आक्रमण नही कर रहा हूँ।

उद्धव—तब फिर?

कृष्ण—जिन बहुत-सी राजकुमारियो को उसने रोक रखा है, उनका पत्र आया है। उन्होने लिखा है कि वे अपनी रक्षा अब केवल एक मास तक ही कर सकेगी, इसके पश्चात् या तो उन्हे उस राक्षस को, जिसे वे हृदय से घृणा करती है, अपना आत्म-समर्पण करना होगा, या विष खाकर मर जाना होगा। उन बेचारी अबलाओ के रक्षणार्थ यह आक्रमण अनिवार्य है।

बलराम—अबलाओ की रक्षा तो प्रथम कर्तव्य है।

उद्धव—अवश्य, अवश्य।

कृष्ण—तो चलिए, इसीका प्रबन्ध कीजिए।

[तीनो का प्रस्थान। परदा उठता है।]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—भौमासुर की राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर के राज-प्रासाद का एक कक्ष

समय—सन्ध्या

[कक्ष उसी प्रकार है जैसा अयोध्या के राज-प्रासाद का कक्ष था। कक्ष की भित्तियों आदि का रंग उस कक्ष के रंग से भिन्न है। द्वारों से बाहर के उद्यान का कुछ भाग दिखायी देता है, जो डूबते हुए सूर्य की प्रभा से आलोकित है। कक्ष में सोलह राज-कन्याएँ बैठी हुई बातें कर रही हैं।]

एक—देखा, करुणानिधान कृष्ण को देखा; शरणागत-वत्सल कृष्ण को देखा!

दूसरी—हाँ, सखि, हमारा पत्र पाते ही वे दौडे आये!

तीसरी—और पापी की जड तो मानो पत्थर पर रहती है।

चौथी—हाँ, ऐसे बलवान भौमासुर का सहार करने मे कृष्ण को विलब न लगा।

पाँचवीं—पर, सखि, हमने उन्हे निरर्थक ही कष्ट दिया, हमारे भाग्य मे तो दोनो प्रकार से मरण लिखा था। पर-घर मे रही हुई हमको समाज मे कौन ग्रहण करेगा?

छठवीं—हाँ, सखि, हम चाहे कैसी ही सती-साध्वी हो, पर, स्त्री का पर-घर मे रह जाना ही उसके जीवन को नष्ट कर देने के लिए यथेष्ट है।

सातवी—पर, अब हम सुख से मरेगी।

आठवीं—हाँ, पापी का तो नाश हो गया।

नवी—अब चिन्ता नही, हम भी मर जायँ।

दसवीं—वह न मरता तो हमे भी मरने मे दु ख रहता।

ग्यारहवी—फिर इस समय मरने मे दूसरा आनद यह है कि जिनके गुणानुवाद इतने दिन तक सुन रही थी, उन द्वारकाधीश के दर्शन भी हो गये।

बारहवी—अहा! उनका कैसा स्वरूप है!

तेरहवीं—और कैसी वाणी!

चौदहवीं—और कैसा स्वभाव!

पन्द्रहवीं—सभी कुछ अनुपम है !

सोलहवी—क्यो, सखि, वे दया के सागर, पतितो के पावन द्वारकाधीश ही हमे न ग्रहण कर लेगे ?

सब—आहा ! यदि यही हो जाय तो क्या पूछना है !

पहली—पर, वे ही हमे समाज की मर्यादा तज क्यो ग्रहण करने लगे।

दूसरी—और फिर सबको ?

तीसरी—फिर, सखि, विलब क्यो ? हीरे की एक-एक मुद्रिका तो सबके पास है न ?

चौथी—हाँ, सबके।

पाँचवीं—तो चलो, उनको ही खाकर, इस असार ससार, इस पापी ससार, इस क्रूर ससार को छोड दे।

सब—चलो।

[सब खड़ी होती है। कृष्ण का प्रवेश। उन्हें देख सब सिर नीचा कर लेती है।]

कृष्ण—राजकुमारियो, मैंने तुम लोगो के भाषण सुन लिए है। मै जानता हूँ कि आज का समाज तुम्हे उचित विधि से ग्रहण करने को प्रस्तुत न होगा। यदि तुमने प्राण ही दे दिये तो फिर भौमासुर और इतने प्राणियो के सहार से क्या लाभ हुआ ? तुम्हारी इच्छा भी मैंने सुन ली है। सुन्दरियो, मेरी इच्छा एक विवाह करने की भी न थी, पर मै देखता हूँ कि एक के स्थान पर न जाने मुझे कितने विवाह करने पड रहे है। जो कुछ हो, लोक-हितार्थ, लोक-सुखार्थ जो कुछ भी सम्मुख आयेगा, शक्ति

के अनुसार किये बिना मन ही न मानेगा। मैं जानता हूँ कि तुम सब शुद्ध हो, समाज की टीका की मुझे चिन्ता नही है, तुम्हारी इच्छानुसार मैं तुम सबो को ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत हूँ।

सब—(आश्चर्य से) अहो! हमारे ऐसे भाग्य! हमारे ऐसे भाग्य!

एक—यदि चाहे तो हमारी शुद्धता की आप परीक्षा कर ले, करुणेश।

कृष्ण—नही, सुन्दरियो, नही, मेरा अन्त करण कहता है कि तुम सब शुद्ध, नितान्त शुद्ध हो; मुझे परीक्षा की आवश्यकता नही है।

यवनिका-पतन

चौथा अंक

पहला दृश्य

स्थान—इन्द्रप्रस्थ मे द्रौपदी के प्रासाद की दालान

समय—प्रात काल

[दालान वैसी ही है जैसी मथुरा और द्वारका के राज-प्रासादो की थी। रंग उनसे भिन्न है। द्रौपदी और रुक्मिणी खड़ी हुई बाते कर रही हैं। द्रौपदी की अवस्था लगभग चालीस वर्ष की है। ऊँची, सुडौल, प्रौढ़ा स्त्री है, वर्ण साँवला होने पर भी सौंदर्य की कमी नहीं है। रुक्मिणी की अवस्था अब तीस वर्ष के लगभग दिखती है। द्रौपदी पीत वर्ण के रेशमी वस्त्र और रुक्मिणी नील वर्ण के रेशमी वस्त्र पहने है। दोनो रत्न-जटित आभूषण धारण किये है।]

रुक्मिणी—मेरे विवाह को लगभग पन्द्रह वर्ष हो गये। इस दीर्घ काल मे आपका राज्य और आपकी प्रतिष्ठा के सम्बन्ध मे यदुनाथ को जितना चिन्तन करते देखा उतना किसी विषय पर नही।

द्रौपदी—उनकी जितनी कृपा हम लोगो पर है, उससे हम कभी उऋण नही हो सकते। सखि, मुझे वे भगिनी मानते एव कृष्णा कहते है और गाडीवधारी को सखा। फिर जितना कोई और सहोदर अपने सहोदर पर प्रेम नही करता, उतना वे हम पर करते है, मुझपर उनका सुभद्रा से भी अधिक स्नेह है। हमारा राजसूय-यज्ञ उनके कारण ही सफल हो सका। ज्येष्ठ पाण्डव का नियम है कि उन्हे द्यूत खेलने के लिए जो बुलाता है वे उससे अवश्य द्यूत खेलते है।

रुक्मिणी—ज्येष्ठ पाण्डव ही क्यो, द्यूत आधुनिक काल का सर्वश्रेष्ठ खेल माना जाता है और कोई भी क्षत्रिय द्यूत का निमत्रण अस्वीकृत करना निदनीय मानता है।

द्रौपदी—हाँ, परन्तु ज्येष्ठ पाण्डव मे तो एक और दोष है कि हारते समय उन्हे फिर कुछ दिखायी ही नही देता। शकुनी के कपटाचार के कारण जब वे सर्वस्व हार गये तब मुझे भी द्यूत मे लगा दिया और जब मुझे भी हार गये तब मेरी लज्जा कृष्ण के कारण ही बची, नही तो मै भरी सभा मे नग्न कर ही डाली जाती। हमारे बारह वर्ष के वनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास मे उन्होने हमे प्रकट रूप से ही सहायताएँ नही दी, वरन् गुप्त रूप से भी अनेक दी। कुरुवश का यह युद्ध न होने पावे, इसके लिए उन्होने क्या कम उद्योग किया ? स्वय दूत का कार्य स्वीकार किया, दुर्योधन उन्हे बन्दी बना लेगा, यह समाचार फैला हुआ था, पर इतने पर भी वे कौरव-सभा मे गये। दुर्योधन ने उन्हे बन्दी करने का भी कम उद्योग नही किया, पर हमारा सौभाग्य कि वे बच गये।

रुक्मिणी—उनके बन्दी होने के प्रयत्न का समाचार फैलने से वे कौरव-सभा मे न जायँ यह तो असम्भव था। विघ्न-बाधाओ की उपेक्षा तो उनका स्वभाव ही है, सखि, फिर सब कुछ यदुनाथ निष्पक्ष होकर करते है।

द्रौपदी—निष्पक्ष होकर करते है, या निष्पक्ष बनते है, सो तो कहना कठिन है, सखि, पर निष्पक्षता दर्शाते अवश्य है। युद्ध मे हमारी ओर होना ही था, पर इसमे भी कैसी निष्पक्षता दिखायी।

रुक्मिणी—यह मुझे ज्ञात नही है।

द्रौपदी—यह तो अभी की बात है। तुम जानती ही हो कि आधुनिक काल मे युद्ध के निश्चित नियमो के अनुसार जो पक्ष पहले रण-निमत्रण देने के लिए पहुँचता है उसी पक्ष का युद्ध में साथ देना पडता है।

रुक्मिणी—हाँ, यह तो जानती हूँ।

द्रौपदी—भैया को रण-निमत्रण देने दुर्भाग्य से दुर्योधन पहले पहुँचे, पर, कौन्तेय के पहुँचने के पूर्व आप उनसे मिलनेवाले कब थे ? सो गये। जब कौन्तेय पहुँच गये तब उठे और कहते है आ गये, धनजय ? दुर्योधन ने तत्काल कहा कि पहले मै आया तो आप बोले, पहले मैंने कौन्तेय को देखा है।

रुक्मिणी—सच बात तो यह है कि उनकी सदा धर्म, न्याय और सत्य-पक्ष एवं दुखियो से सहानुभूति रहती है। जिस विधि से भी बने, वे इनका कल्याण करना चाहते है।

द्रौपदी—हॉ, सखि, सौ बात की एक बात यह है। पाण्डव-पक्ष को वे धर्म, न्याय और सत्य का पक्ष होने के कारण ही सहायता देते है और दु ख की तो बात ही न करो। हमने जितने दु ख पाये है, उतने तो ससार मे कदाचित् ही किसीने पाये हो। लाक्षा-भवन मे हम जलाये गये, दूसरे पाण्डव को विष खिलाया गया, बल से हमारा राज्य हरण कर बारह वर्ष तक हमें वन-वन और अरण्य-अरण्य घुमाया गया, एक वर्ष तक अज्ञात रहने का हमसे वचन लिया गया और यदि इस अज्ञात रूप से रहने को

हम निभा न पाते तो फिर बारह वर्ष का वन और एक वर्ष का अज्ञात-वास; फिर चूके तो फिर वही। जन्मभर क्या वह वनवास और अज्ञातवास समाप्त होनेवाला था ? धर्मराज को तुम जानती ही हो, मनसा, वाचा, कर्मणा भी वे असत्य का चितन तक नही कर सकते। कौरव जानते थे कि भारतवर्ष मे पाण्डवो का अज्ञात रहना असभव है।

रुक्मिणी—असम्भव नही तो कम से कम इसके नीचे की सीढी तो अवश्य थी।

द्रौपदी—हाँ, सखि, इसमे सन्देह नही। अज्ञातवास का एक-एक मुहूर्त्त, एक-एक कला, एक-एक काष्ठा, एक-एक त्रुटि और एक-एक लव-क्षण जिस मानसिक और शारीरिक कष्ट से हमने बिताया है, वह हम आजन्म न भूलेगे। हम-सा दुखिया कोई न होगा, कोई नही।

रुक्मिणी—और इतने दु ख पाने के पश्चात् भी यह युद्ध होगा।

द्रौपदी—क्या किया जाय, विवशता है। भैया ने पॉच गाँव तक माँगे, पर जब दुर्योधन ने सुई की नोक बराबर पृथ्वी भी देना अस्वीकार कर दिया, तब भैया ने ही कह दिया कि अब युद्ध न होना अधर्म होगा।

रुक्मिणी—हाँ, अधर्म, अन्याय, असत्य, अत्याचार की कोई सीमा है! आश्चर्य तो यह है कि कुरु-देश के महारथी, भीष्म, द्रोण, कृप आदि अब भी दुर्योधन की ओर से ही युद्ध करेगे।

द्रौपदी—इसमे आश्चर्य क्या है, सखि ? जब दुर्योधन ने दु शासन से भरी सभा मे मुझे नग्न करने को कहा था, तब भी तो ये सब उसी सभा मे उपस्थित थे, पर किसीके मुख से एक शब्द भी न निकला।

रुक्मिणी—मुझे बड़ा खेद है, सखि, कि यदुनाथ आपके पक्ष मे होने पर भी युद्ध न करेगे।

द्रौपदी—इसके लिए क्या किया जा सकता है। वे युद्ध को अक्षम्य, हत्यामय काण्ड मानकर सदा को छोड चुके है। पर, इससे क्या ? वे हमारे पक्ष मे है, इसीसे हमारी विजय होगी। मेरा दृढ विश्वास है कि जिस पक्ष में वे है, वह पक्ष हार ही नही सकता। फिर उन्होने हमारे लिए सूत का, निम्न-श्रेणी का कार्य करना तक स्वीकार किया है। उनके साथी रहने से धनजय को कोई भय नही है।

रुक्मिणी—एक सबसे बडा सुयोग यह हो गया कि मेरे जेठ बल-रामजी के हाथ से नैमिषारण्य के सूत पुराणी की हत्या हो गयी और वे तीर्थ यात्रा को चले गये, नही तो इस समय बडी कठिनाई हो जाती। दुर्योधन उनका शिष्य है और उनकी सदा ही दुर्योधन से सहानुभूति रहती है।

द्रौपदी—यदि यह न भी होता तो इसके लिए भी कृष्ण कोई न कोई युक्ति निकाल ही लेते। (**नेपथ्य में वाद्य का शब्द होता है।**) प्रात - काल का वाद्य बज रहा है, कुरुक्षेत्र मे इसी समय युद्ध आरभ हुआ होगा। आज ही युद्ध का प्रथम दिवस है।

रुक्मिणी—तो चलो, सखि, हम भगवान् से पाण्डवो के विजय की मगल-कामना करे।

[दोनों का प्रस्थान। परदा उठता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान—कुरुक्षेत्र का मैदान

समय—प्रात काल

[दूरी पर दो सेनाएँ दिखती है, जिनके कवच और शस्त्र प्रातःकाल

के प्रकाश में चमक रहे है। अर्जुन का रथ खड़ा हुआ है। रथ में चार घोडे जुते हैं। इसकी बनावट पहले अंक के तीसरे दृश्य के रथ के समान ही है। अन्तर इतना ही है कि इसमें छतरी नही है। ध्वजा एक पतले स्तभ पर, सामने की ओर लगी है और उसपर बन्दर का चित्र बना है। कृष्ण सारथी के स्थान पर बैठे है। अर्जुन रथी के स्थान पर आसीन है। सामने धनुष रखा है और अर्जुन का मुख उदासीन भाव से झुका हुआ है। अर्जुन की अवस्था लगभग पैतालीस वर्ष की है। वर्ण साँवला है, परन्तु मुख सुन्दर और शरीर गठा हुआ है। वे आभूषण और शस्त्रो से सुसज्जित है। शरीर पर लोह-कवच और सिर पर शिरस्त्राण धारण किये हुए है। कवच और शिरस्त्राण पर सुवर्ण भी लगा है। अर्जुन हाथो में गोधागुलिस्त्राण भी पहले है। कृष्ण की अवस्था लगभग पैतालीस वर्ष की है, पर मुख और शरीर वैसा ही है। सारे वस्त्र श्वेत है, सिर खुला हुआ है, कोई आभूषण नहीं है और न पास में कोई शस्त्र ही है। सन्नाटा छाया हुआ है। कृष्ण अर्जुन की ओर देख रहे है। कुछ देर में अर्जुन धनुष को उठाने के लिए हाथ बढाते हैं और नीचे मुख को मुस्कराते हुए ऊपर उठा कृष्ण की ओर देखते है।]

कृष्ण—बहुत शीघ्र, मित्र, बहुत ही शीघ्र तुम्हारे अद्‌भुत ज्ञान का अन्त हो गया। तुम्हारे मुख के भाव तो फिर बदल रहे है, अग फिर दृढ हो रहे है, तुम तो फिर गाण्डीव उठा रहे हो। वह रोमाच, वह स्वेद, वह शरीर की शिथिलता कहाँ गयी, धनजय!

अर्जुन—(मुस्कराते हुए) तुम्हारा यह नि:शस्त्र स्वरूप देखकर तो वह ज्ञान और बढ गया था, सन्यास लेने की प्रवृत्ति और अधिक हो गयी थी।

कृष्ण—(मुस्कराकर) मैने तो सन्यास नही लिया है, कौन्तेय। हाँ, प्रत्येक के मन की पृथक्-पृथक् अवस्थाएँ होती है और उन्हीके अनुसार उनके कार्य होते हैं।

अर्जुन—मानता हूँ, मित्र, कि तुम्हारी अवस्था तक पहुँचने मे अभी मुझे न जाने कितना समय लगेगा। केवल सुन लेने, कह देने अथवा समझ लेने और समझा देने से वह स्थिति नही हो सकती, उसके लिए सम-भाव के अनुभव की आवश्यकता होती है।

कृष्ण—तो मानते हो न कि वह मोह था, ज्ञान नही ?

अर्जुन—अवश्य, वह ज्ञान नही, मोह था।

कृष्ण—और मेरी कही हुई समस्त बाते तुम्हारी समझ में बैठ भी गयी ?

अर्जुन—कितनी सुन्दरता से, सो सक्षेप मे कहे देता हूँ, सुन लो—मोह सदा क्षणिक रहता है ज्ञान के सदृश स्थायी नही। यो तो ससार मे एक चिउँटी की हत्या भी निन्दनीय है, परन्तु सद्सिद्धान्तो की हत्या के सम्मुख अक्षौहणियो की हत्या भी तुच्छ वस्तु है। ससार मे पृथकत्व केवल स्थूल दृष्टि से देखने मे ही है, यथार्थ मे सभी मे एकता है और सबमे एक शक्ति का ही सचार हो रहा है। आत्मा अजर एव अमर है, अत शरीर के नाश से उसका कोई सबन्ध नही, और यदि आत्मा नही है और शरीर की उत्पत्ति के साथ ही चेतना की उत्पत्ति होती है, तो भी शरीर के नाश को कोई महत्त्व नही। नित्य असख्यो शरीर उत्पन्न और असख्यो नष्ट होते हैं। जब तक शरीर है तब तक कर्म करना ही होगा, क्योकि साँस लेना भी कर्म है और यदि कर्म से छुट्टी पाने के लिए आत्म-हत्या भी की जाय तो वह भी एक निन्दनीय कर्म होगा। मै कर्म निष्काम होकर, फलेच्छा-रहित होकर करने को प्रस्तुत हूँ। सद्सिद्धान्तो की रक्षा और जगत् का स्थायी हित इसीसे हो सकता है, यह मै मानता हूँ, कृष्ण। अब तुम्ही कहो, तुम्हारी सब बाते मेरी समझ मे बैठ गयी या नही।

कृष्ण—(मुस्कराकर) तो अब रथ आगे बढाया जाय ?

अर्जुन—(गाण्डीव धारणकर तथा देवदत्त शंख को उठा) अवश्य।

[कृष्ण रथ चलाते है। अर्जुन शंख बजाता है। परदा गिरता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान—गोकुल का एक मार्ग

समय—प्रात काल

[नेत्र-रहित राधा का कृष्ण-वेश में करतालें बजाते और गाते हुए प्रवेश। राधा अब क्षीणकाय नही है। नेत्र चले गये है, पर पलकों के चारों ओर आँसू दिखते है।]

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगे मीठे फल को रस अन्तर्गत ही भावै॥

तुही पंच तत्व, तुही सत्व, रज, तम तुही,
थावर औ जंगम जितेक भावो भव मै।
तेरे ये बिलास लौटि तोही मे समान्यो कछु,
जान्यो न परत पहिचान्यो जब जब मै॥
देख्यो नहीं जात तुही देखियत जहाँ-तहाँ,
दूसरो न देख्यो कृष्ण तुही देख्यो अब मै।
सबकी अमर मूरि, मारि सब धूरि कहै,
दूर सब ही ते भरपूरि रह्यो सबमै॥

परम स्वाद सब ही जु निरन्तर, अमित तोष उपजावै।
मन बानी को अगम अगोचर, जो जाने सो पावै ॥अविगत०।

अग, नग, नाग, नर, किन्नर, असुर, सुर,
प्रेत, पसु, पच्छी, कोटि कोटिन कढ्यो फिरै।
माया, गुन, तत्व, उपजत, बिनसत सत्व,
काल की कला को ख्याल खाल मे मढ्यो फिरै॥
आप ही भखत, भख, आप हो अलख लख,
कहूँ मूढ़ कहूँ महा पंडित पढ्यो फिरै।
आप ही हथ्यार, आप मारत, मरत आप,
आप ही कहार, आप पालको चढ्यो फिरै॥

रूप-रेख गुन जाति जुगुति बिनु, निरालम्ब मन चकृत धावै।
सब बिधि अगम तदपि जाने वह, प्रेम रूप ह्वै कर जो ध्यावै॥
अविगत०।

[बलराम का प्रवेश।]

बलराम—राधे, आपसे यह बलराम जाने के लिए आज्ञा लेने आया है।

राधा—इतने शीघ्र क्यो, देव ?

बलराम—तीर्थ-यात्रा के निमित्त ही मै यहाँ आया था, देवि। आप लोगो के दर्शन की भी अभिलाषा थी, और कुछ दिन रहता, परन्तु सुना है, कुरुक्षेत्र में कौरवों-पाण्डवो का युद्ध आरभ हो गया है। भीष्म पितामह आहत हो धराशायी है और द्रोणाचार्य एवं महारथी कर्ण देवगति को प्राप्त हो चुके है। यह भी सुना है, भगवती, कि युद्ध मे लड़ते हुए इनका सहार

नही हुआ, परन्तु कृष्ण ने कौशल से एक-एक को नि शस्त्र कराकर नष्ट कराया है। यदि युद्ध इसी प्रकार चला तो सारे कुरुवश का नाश हो जायगा। उसे अधर्म से नष्ट कराने के कलक का टीका, युद्ध छोड देने पर भी, कृष्ण के सिर पर लगेगा। मुझे उस ओर तीर्थयात्रा भी करनी है, यात्रा भी हो जायगी और इस नाशकारी युद्ध के निवारण का भी उद्योग करूँगा।

राधा—(मुस्कराकर) कृष्ण के मस्तक पर किसी वस्तु के कलक का टीका लग सकता है, यह तो मै नही मानती, क्योकि उनके कार्य की विधि चाहे कोई क्यो न हो, उनके हर कार्य का उद्देश्य लोक-हित ही होता है। पर, फिर भी यदि युद्ध का हत्या-काण्ड आपके उद्योग से रुक सके, तो अवश्य प्रयत्न करना चाहिए। **(कुछ ठहरकर)** आगामी सूर्य-ग्रहण के अवसर पर तो व्रजवासी भी कुरुक्षेत्र जावेगे, तब तक तो आप लोग भी कुरुक्षेत्र ही मे रहेगे ?

बलराम—अब सूर्य-ग्रहण के दिवस ही कितने है। सारा देश जब सूर्य-ग्रहण पर कुरुक्षेत्र पहुँचेगा, तब तक हम लोग, जो वहॉ पहले से ही रहेगे, ग्रहण के पूर्व कुरुक्षेत्र क्यो छोडने लगे, देवि।

राधा—पर, सुना है, इस युद्ध के कारण इस बार वहॉ बहुत कम लोग जायँगे।

बलराम—उसके पूर्व या तो युद्ध समाप्त हो जायगा, या सन्धि हो जायगी। ऐसा भयकर युद्ध बहुत समय तक नही चल सकता। **(कुछ ठहरकर)** तो चलता हूँ, देवि, इन थोडे दिनो मे ही व्रज की जैसी परिस्थिति देखी, वह आजन्म विस्मृत न होगी। आपने व्रज मे कृष्ण-प्रेम का जो अद्वितीय स्रोत बहाया है, कृष्ण-विरह से कृष्ण के प्रति जिस अद्भुत प्रेम की उत्पत्ति हुई है, वह केवल कृष्ण की ही नही, सारे विश्व की सम्पत्ति हो गयी है।

यह धन कदाचित् व्रज का अटूट धन होगा और सदा ही व्रज के कोष में स्थिर रहेगा। धन्य है आप, राधे, धन्य है! किसने आज-पर्यन्त आप-सा आनन्द पाया है! कौन इस प्रेम मे आँसू बहा-बहा, चर्म-चक्षुओ को खो कर हृदय-चक्षु खोल सका है! कौन अपने को अपने प्रेमी के, एव सारे विश्व को अपने प्रेमी के रूप मे देख सका है! धन्य, सचमुच धन्य है आपको और धन्य है आपके इस प्रेम-मार्ग को!

राधा—(अंधे नेत्रो से अश्रु बहाते हुए) मै क्या धन्य हूँ, मै क्या धन्य हूँ! और यदि मै धन्य हूँ, तो जिसने अपने को, अपने हृदय को, इस प्रेम मे सराबोर कर दिया है, वे सभी धन्य है, देव!

बलराम—(राधा के चरण स्पर्शकर) तो आज्ञा माँगता हूँ, प्रेम-रूपिणी।

राधा—कल्याण हो आपका और कल्याण हो इस कृष्ण-रूप समस्त विश्व का।

[बलराम का प्रस्थान। राधा फिर गाती है।]

प्रेम प्रेम तें होय, प्रेम ते पर ह्वै जइए।
प्रेम बँध्यो ससार, प्रेम परमारथ लहिए।
प्रेम प्रेम सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोय।
जो जन जाने प्रेम तो, मरै जगत क्यो रोय।
प्रेम प्रेम ते होय०।

प्रेम-रूप दर्शन अहो, रचै अजूबो खेल।
या में अपनो रूप कछु, लखि परिहै अनमेल।
प्रेम प्रेम तें होय०।

जेहि बिनु जाने कछुहि नहिं, जान्यो जात बिसेस।
सोई प्रेम जेहि जानि कै, रहि न जात कछु सेस।
प्रेम प्रेम तें होय०।

प्रेम-फाँस में फँसि मरै, सोई जिये सदाहि।
प्रेम-मरम जाने बिना, मरि कोउ जीवत नाहि।
प्रेम प्रेम तें होय०।

जग मे सब तें अधिक अति, ममता तनहिं लखाय।
पै या तनहू तें अधिक, प्यारो प्रेम कहाय।
प्रेम प्रेम ते होय०।

एकै निस्चय प्रेम को, जीवन-मुक्ति रसाल।
साँचो निस्चय प्रेम को, जिहि ते मिलै गुपाल।
प्रेम प्रेम तें होय०।

[गाते और आँसू बहाते हुए राधा का प्रस्थान। परदा उठता है।]

चौथा दृश्य

स्थान—कुरुक्षेत्र की रणभूमि

समय—सध्या

[चारों ओर मनुष्यो, हाथी, घोड़ों की लाशें, कटे सिर, हाथ, पैर आदि, टूटे रथ और आयुध पड़े है। सन्ध्या का मन्द प्रकाश फैला हुआ है। कृष्ण और अर्जुन खडे दाहनी ओर देख रहे है।]

कृष्ण—दुर्योधन के संहार से आज इस महायुद्ध का अन्त और पाण्डवो विजय हो जायगी।

अर्जुन—इन सबके कारण तुम हो, कृष्ण।

कृष्ण—(**अर्जुन की ओर सिर घुमाकर**) फिर वही, तुम कारण और मै कारण, अरे, कोई कारण नही है, सब निमित्तमात्र है। यदि इतने उद्योग के पश्चात् भी कौरव ही जीत जाते तो भी मेरे हृदय की तो वही अवस्था रहती जो अब है। (**फिर सामने की ओर देखते हुए कुछ ठहरकर**) पर, देखो, अर्जुन, तुम्हारा अग्रज यह भीमसेन बडा मूर्ख है, अभी भी दुर्योधन से शास्त्रोक्त मल्ल-युद्ध कर रहा है। प्रकर्षण, आकर्षण, विकर्षण और अनुकर्षण-कौशल दिखा रहा है। इतना समझा दिया था कि दुर्योधन का उरुदण्ड बडा निर्बल है, एक ही गदा मे काम होता था। (**कुछ ठहरकर**) दुर्योधन बलराम का शिष्य है, भीम इस प्रकार लडा तो हारकर ही रहेगा। (**कुछ ठहरकर**) अब हारने ही लगा तो देखो, उधर चकपकाकर देख रहा है। मै फिर सकेत करता हूँ।

[**कृष्ण पैर ऊँचाकर हाथ जाँघ पर मारते है। बलराम का प्रवेश।**]

बलराम—कृष्ण ! कृष्ण !

[**कृष्ण बलराम का शब्द सुन उस ओर देख आगे बढ़ते है और उनके चरण-स्पर्श करते है। अर्जुन भी यही करते है।**]

कृष्ण—आप कब पधारे, आर्य !

बलराम—अभी आ रहा हूँ। यह सकेत काहे का हो रहा था ? दुर्योधन की भी हत्या करानी है क्या ?

कृष्ण—(**मुस्कराकर**) आप तो तीर्थ-यात्रा मे है न, तात ? इन सब प्रपंचो से आपको क्या प्रयोजन है ?

बलराम—(**क्रोध से**) मुझसे एक सूत की हत्या हो गयी, इसका निवारण मै तीर्थ-यात्रा करके करूँ और तुम यहाँ पूज्यपाद भीष्म पिता-गुरुदेव द्रोण आदि को नि शस्त्र कराकर उनका सहार कराओ। दुर्योधन की भी एक प्रकार से हत्या करने के लिए भीम को सकेत करो।

कृष्ण—(**मुस्कराकर**) आर्य, आपने सूत की हत्या क्रोध के आवेश मे आकर की थी, उसका आपके हृदय पर बुरा प्रभाव पडा। मैंने क्रोध या किसी प्रकार के आवेश मे आकर कुछ नही किया। जो कुछ मैंने किया —धर्म, न्याय, सत्य की विजय के लिए कर्तव्य समझकर किया है और वह भी फलेच्छा-रहित हो; अत. मेरे हृदय पर किसी बात का कोई प्रभाव नही पडा, तात। जिनकी आप हत्या हुई कहते है, उनपर मेरा इतना ही प्रेम था, जितना पाण्डवो पर है। पितामह, गुरुदेव आदि का मुझपर भी अत्यधिक प्रेम था ।

बलराम—(**और भी क्रोध से**) धर्म, न्याय, सत्य और प्रेम! वाह रे तुम्हारा धर्म, न्याय, सत्य और प्रेम!

कृष्ण—(**दाहनी ओर देखते हुए बलराम का क्रोध शान्त न होते देख**) पर, आर्य, अब तो आपका क्रोध भी निरर्थक है! दुर्योधन को भी भीम ने पछाड डाला।

बलराम—(**अत्यंत क्रोध से**) दुर्योधन मेरा शिष्य है, इसलिए मैं उसका पक्ष लेकर तुमसे विवाद नही कर रहा था। मेरे पहुँचने के पूर्व ही कौरव तो नष्ट हो गये थे। एक दुर्योधन बचा था। उससे भी भीम का युद्ध हो रहा था। मै चाहता, तो भी उसे कैसे बचाता? यदि वह बच भी जाता तो अकेला बचता, जैसा न बचता। पर, मुझे तुम्हारे ऊपर खेद होता है, कृष्ण, तुम्हारे ऊपर। युद्ध छोडने के पश्चात् भी तुमने इस युद्ध मे जो अधर्म किये है, नि शस्त्र वीरो, गुरुजनो और ब्राह्मणो की जिस प्रकार हत्या करायी

है, उसपर मुझे खेद होता है। तुम्हारे जीवन मे इस युद्ध का जो इतिहास लिखा जायगा, उसमे तुम्हारा ऐसा नीच चित्र खिचेगा, ऐसा अन्याय-पूर्ण चित्र अकित होगा, ऐसा अधर्ममय चित्र दिखेगा कि सारे यदुवश पर उसका लाछन रहेगा। युद्ध तो समाप्त हो ही गया है। शान्ति के समय जब तुम अपनी इन कृतियो पर विचार करोगे, तब तुम्हे स्वय खेद होगा, दु ख होगा, शोक होगा, क्लेश होगा, पश्चात्ताप होगा। जीवित रहते हुए तुम सदा इससे यत्रणा पाओगे और मरने के पश्चात् भी तुम्हे सुख न मिलेगा। हा! नि शस्त्र गुरुजनो की हत्या! ब्राह्मणो की हत्या!

कृष्ण—(हँसकर) आर्य, इस समय आप मुझपर बहुत अधिक अप्रसन्न है और मुझे आपके इस भाषण पर इतनी हँसी आ रही है कि आप और अप्रसन्न हो जायँगे, पर, क्या करूँ, वह रुकती ही नही।

[कृष्ण जोर से हँस पड़ते है।]

यवनिका-पतन

पाँचवाँ अंक

पहला दृश्य

स्थान—कुरुक्षेत्र मे पाण्डवो के प्रासाद की दालान

समय—संध्या

[वही दालान है जो चौथे अंक के पहले दृश्य में थी। द्रौपदी और रुक्मिणी खड़ी हुई बातें कर रही है।]

द्रौपदी—(आँसू भरकर) क्या कहूँ, बार-बार हृदय भर-भर आता है। भैया के और तुम्हारे जाने के पश्चात् हमारे दिन कैसे निकलेगे, सखि? और, अब जाने को दिन ही कितने रह गये हैं?

रुक्मिणी—क्या मुझे आपका स्मरण न आयेगा? पर, क्या करूँ, जाना तो पडेगा ही। फिर जब आप स्मरण करेंगी, तभी हम लोग आप की सेवा मे उपस्थित हो जायँगे।

द्रौपदी—अब तक तो विपत्ति के दिन थे, इसलिए नित्य ही भैया का स्मरण करती थी, परन्तु सुख के दिनो मे सुहृदो को कौन कष्ट देता है?

इस महासग्राम मे भी वे न होते तो न जाने, युद्ध मे हमारी क्या दशा होती ? उनके बिना धनजय का मोह कौन नाश कर सकता था ? कौन उनके बिना भीष्म, द्रोण, कर्ण, दु शासन, दुर्योधन आदि महारथियो को निधन कराने की शक्ति रखता था ? किसमे जयद्रथ को मरवा कौन्तेय की प्रतिज्ञा सत्य कराने की सामर्थ थी ? कौन अभिमन्यु और मेरे पाँचो पुत्रो की हत्या के हमारे दु ख को शान्त कराने का साहस करता और किसको, धर्मराज की ग्लानि को, जो उन्हे भीष्म, द्रोण आदि की ऊपर से दिखनेवाली नि शस्त्र हत्याओ से हुई थी, निवारण करने मे सफलता मिल सकती थी ? फिर कौरव-पक्ष मे भी कौन पूज्यपाद धृतराष्ट्र और गाधारी को सान्त्वना देने की सामर्थ रखता था ? पर, सखि, अब तो सूर्य-ग्रहण होते ही परसो तुम और भैया चले जाओगे। अच्छा होता, यदि हम सदा ही विपत्ति मे रहते।

[द्रौपदी के आँसू टपकते है। कृष्ण का प्रवेश। कृष्ण व्रज का शृंगार किये हुए है।]

कृष्ण—क्यो, कृष्णा, काहे का दुख हो रहा है, मेरे जाने का ? ससार मे दु ख तो किसी बात का करना ही नही चाहिए। अरे, एक दिन तो यह ससार ही छोडना है, फिर मुझे तो जब बुलाओगी आ जाऊँगा।

द्रौपदी—(**आँसू पोंछते हुए**) तुम्हारा-सा हृदय सबका नही होता भैया। (**कृष्ण का शृंगार देख**) पर, यह आज कैसा अद्भुत वेश है ?

कृष्ण—यह व्रज का वेश है, कृष्णा। व्रजवासी सूर्य-ग्रहण का स्नान करने कुरुक्षेत्र आये है। नद बाबा, यशोदा मैया तथा अनेक गोप-गोपियो से तो मै मिल आया हूँ, पर अब राधा से मिलना है। इस वेश बिना यदि मै राधा से मिलूँगा तो उसे कष्ट होगा।

रुक्मिणी—एक बार जब मैने इन्हें व्रज का वेश दिखाने को कहा

था, तब इन्होने नही माना, पर उस आभीर-रमणी को तो अवश्य प्रसन्न करेंगे।

कृष्ण—तुम उसका वृत्त नही जानती, रुक्मिणी। मै उसके निकट आज चालीस वर्ष से नही हूँ, परन्तु फिर भी, इस विश्व मे मुझसे उतना प्रेम कोई नही करता, जितना वह करती है।

रुक्मिणी—मै भी नही, नाथ?

कृष्ण—हाँ, तुम भी नही।

द्रौपदी—और मै भी नही, भैया?

कृष्ण—तुम भी नही, कृष्णा।

द्रौपदी—तब तो मै उनके दर्शन अवश्य करूँगी।

रुक्मिणी—और मै भी।

कृष्ण—अच्छी बात है, तो चलो, मै वही जा रहा हूँ। आज उन्होने होली न होते हुए भी होलिकोत्सव मनाया है।

[तीनों का प्रस्थान। परदा उठता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान—कुरुक्षेत्र का गगा-तट

समय—संध्या

[गंगा के किनारे सघन वृक्ष है। गंगा का नीर और वृक्षो के

ऊपरी भाग सूर्य की सुनहरी किरणों में जगमगा रहे हैं। कृष्ण-रूप में राधा वंशी बजा रही है। गोप-गोपी गा रहे हैं। गुलाल उड़ रही है।]

ऋतु फागुन नियरानी, कोई पिय से मिलाओ, ऋतु फागुन नियरानी।
सोइ सुँदर जाके पिया ध्यान है, सोइ पिय के मनमानी।
खेलत फाग अग नहीं मोड़ै, पियतम सों लिपटानी॥
इक-इक सखियाँ खेल घर पहुँचीं, इक-इक कुल अरुझानी।
इक-इक नाम बिना बहकानी, हो रहि ऐंचातानी॥
पिय को रूप कहा लगि बरनौ, रूपहि माँहिं समानी।
जो रँग रँगे सकल छबि छाके, तन-मन सभी भुलानी॥
यों मत जान यहि रे फाग है, यह कछु अकथ कहानी।
होली राधा-माधव की तो, बिरले ही ने जानी॥

[कृष्ण, द्रौपदी और रुक्मिणी का प्रवेश।]

कृष्ण—राधा, कृष्ण-रूपिणी राधा!

राधा—(इधर-उधर दौड़, टटोलते-टटोलते कृष्ण को पाकर कृष्ण के गले में हाथ डाल) कृष्ण, प्यारे कृष्ण, कृष्ण!

कृष्ण—नेत्र चले गये, राधा!

राधा—हाँ, चर्म-चक्षु चले गये, सखा, पर हृदय-चक्षु खुल गये हैं। लगभग पैंतीस वर्षो मे यह अनुभव कर सकी, जिसे तुमने व्रज छोडने के समय कहा था—मै ही कृष्ण हूँ, सारा विश्व कृष्ण है। सुख, सर्वत्र सुख है। तुमने मुझे ऐसा सुखी बना दिया, सुख का ऐसा पूर हृदय पर चढा दिया कि मैं सारे ससार को सुख बाँट सकती हूँ।

कृष्ण—अनेक जन्म बीतने पर भी जो अनुभव नही होता, उसे तुम इतने शीघ्र कर सकी।

राधा—क्यो, सखा, अभी तुम ग्यारह वर्ष के ही हो ?

कृष्ण—नही, सखि, मेरी अवस्था भी उतनी ही है जितनी तुम्हारी।

राधा—पर, मेरे हृदय-चक्षुओ से तो तुम उतने ही बडे दिखते हो। वैसा ही सुन्दर बाल-स्वरूप है, सखा, वैसा ही, स्पर्श मे भी तुम मुझे वैसे ही सुखद लगते हो, वैसे ही, वैसा ही प्यारा तुम्हारा स्वर है, वैसा ही, प्यारे सखा, बजाओ, मुरली बजाओ, एक बार फिर सुनूँगी। मेरे प्यारे कृष्ण! मेरे प्राणवल्लभ कृष्ण! मेरे सर्वस्व कृष्ण!

[कृष्ण मुरली बजाते है। राधा अपना मस्तक कृष्ण के कंधे से टिका लेती है। गोपियाँ गाती है और गुलाल छिड़कती हैं।]

राधा-माधव भेट भई।
राधा-माधव, माधव-राधा, कीट भृंग गति हुइ सो गयी॥
माधव राधा के रँग राँचे, राधा माधव रग रयी।
माधव राधा प्रीति निरन्तर, रसना कहि न गयी॥

[कुछ ही देर में राधा का मृत शरीर कृष्ण के चरणों में गिर पड़ता है।]

कृष्ण—देखा, कृष्णा, देखा, रुक्मिणी, यह अद्वितीय प्रेम है, यह प्रेम लक्षणा-भक्ति है।

द्रौपदी—(आश्चर्य से) है! मृत्यु हो गयी! मृत्यु हो गयी! अद्भुत है!

रुक्मिणी—अपूर्व है!

[गोप-गोपियों में हाहाकार होता है। परदा गिरता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान—द्वारका का मार्ग

समय—प्रात काल

[मार्ग, मथुरा के मार्ग के सामान ही है। अनेक नगरवासियो का प्रवेश।]

एक—भारी उत्सव हुआ, बन्धु, भारी उत्सव। हिमालय से कन्या-कुमारी तक और पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र तक, क्या हमारे राज्य में और क्या हमारे राज्य के बाहर, भगवान् श्रीकृष्ण के अस्सी वर्ष की इस जन्म-गाँठ का आज एक मास पूर्व से भारी उत्सव हुआ। हर वर्ष यह उत्सव बढता ही जाता है।

दूसरा—आज ही तो जन्म-गाँठ है, आज उत्सव समाप्त हो जायगा।

तीसरा—आज सारा देश उन्हे परब्रह्म परमात्मा का पूर्णावतार मानता है और इसमे सन्देह ही क्या है?

चौथा—किसीने परब्रह्म परमात्मा को देखा है कि कोई उनका अवतार मान लिया जाय?

दूसरा—जो कुछ भी हो, परन्तु इतना तो मानना ही होगा कि वे आज संसार के सर्वश्रेष्ठ पुरुष है और इसके कारण है।

चौथा—क्या?

दूसरा—बल और ज्ञान दोनो मे अद्वितीय है, स्वार्थ से वे रहित है और उनका नैतिक चरित्र नितान्त शुद्ध है।

चौथा—मै तो यह भी नही मानता। एक बक, एक वत्स, एक गर्धभ, एक सर्प मार डालने से, उस बक को चाहे बकासुर, वत्स को चाहे वत्सासुर, गर्धभ को चाहे केशी और सर्प को चाहे अघासुर बडे बडे नाम दिये जायँ, कोई बलशाली सिद्ध नही हो सकता। रहा ज्ञान, सो यदि धूर्त्तता का नाम ही ज्ञान हो, तब तो दूसरी बात है, नही तो ज्ञान तो कृष्ण मे छू नही गया है और निस्वार्थता की तो बात ही छोड दो, कृष्ण से बडा स्वार्थी न आज तक जन्मा है और न भविष्य मे जन्मेगा।

पहला—क्या बकता है?

चौथा—सत्य कहता हूँ, सत्य। जो कुछ उसने किया सब अपने उत्कर्ष के लिए। नीच कुल मे उत्पन्न हुआ, पर उच्च कुल का बने बिना उत्कर्ष कैसे होता, अत. व्रज के माता-पिता को छोड अपने को वसुदेव-देवकी का पुत्र घोषित किया। उन बेचारे नद-यशोदा को छोडा भी ऐसा कि वे रो-रोकर मरणासन्न हो गये, पर, एक बार भी उनकी सुधि न ली, इसलिए कि कही पुनः व्रज जाने के कारण जन-समुदाय यह न कह दे कि यथार्थ में नद-यशोदा ही उसके पिता-माता है। स्वय सिंहासनासीन तो हो नही सकता था, क्योकि विप्लव हो जाता, अत उग्रसेन के सदृश वृद्ध को सिहासन पर बैठाया, जिसमें उग्रसेन उसके हाथ कठपुतली रहे और सारी राज-सत्ता उसकी मुट्ठी मे। फिर कौरवो-पाण्डवो मे युद्ध करा उनकी शक्ति का संहार करवा डाला, जिससे स्वयं ही सबसे अधिक शक्तिशाली रह सके। कहाँ तक उसके स्वार्थो को गिनाऊँ?

पहला—(**क्रोध से**) क्या मौत तेरे सिर पर नाचती है?

चौथा—(**मुस्कराकर**) पहले कृष्ण के नैतिक चरित्र का इतिहास और सुन लो तब मुझे मारना। (**उँगली पर अँगूठे को रख-रखकर गिनते हुए**)

जिसने पूतना की स्त्री-हत्या की, चोरी की, व्रज की गोपियो से व्यभिचार किया, जो रण मे से भागा, जिसने दूसरे की पुत्री का हरण किया, अपनी भगिनी को भगवाया, अनेक विवाह किये, देश भर मे सर्व-श्रेष्ठ पद पाने के लिए युद्ध-भूमि मे नही किन्तु पाण्डवों के राजसूय-यज्ञ की यज्ञशाला मे शिशुपाल को मारा और कौरव-पाण्डवो के युद्ध में अधर्म से कौरव-पक्ष के नि शस्त्र महारथियो को मरवाया, वह नैतिक दृष्टि से सच्चरित्र ! (ज़ोर से हँसकर) ऐसा मनुष्य आज भगवान् का अवतार हो गया है ! ससार का सर्वश्रेष्ठ पुरुष माना जाता है ! सारे देश मे हर वर्ष उसकी जन्म-गाँठ मनायी जाती है ! सचमुच, ससार बड़ा निर्लज्ज है !

पहला—(क्रोध से) बस, बहुत हो गया, बहुत हो गया। यदि एक शब्द भी और कहा तो जीभ खीच लूँगा, जीभ।

दूसरा—(क्रोध से) मार-मारकर लेह्य बना डालूँगा।

तीसरा—(क्रोध से) भरता-सा भूँज डालूँगा, भरता-सा।

पाँचवाँ—(क्रोध से) चटनी-सी पीस डालूँगा, चटनी-सी।

चौथा—चाहे मारो, पीटो, लेह्य बनाओ, भरता भूँजो या चटनी पीसो, जो सच्ची बात होगी वह मै तो अवश्य कहूँगा।

[कुछ मनुष्य उसे मारने पर उद्यत होते है। एक बढ़कर कहता है।]

छठवाँ—अरे, क्यो नीच के सग नीच होते हो।

सातवाँ—जाने दो जी, उसके मुँह में कीडे पडेगे।

आठवाँ—भगवान् की निन्दा से कौन अच्छा फल पा सकता है।

नवाँ—हाँ, सूर्य की ओर धूल डालने से अपने सिर पर ही गिरती है ?

चौथा—मैं भी ठकुर-सुहाती कहने लगूँ तो अच्छा लगूँ।

पहला—(**छठवें से**) देखो जी, इसे समझा दो, नही तो इस बार मारे बिना न छोड़ूँगा।

चौथा—(**क्रोध से**) किसीको किसीके सबन्ध मे क्या अपना मत प्रकट करने का भी अधिकार नही है ?

पहला—ऐसा मत ! ऐसा मत ! (**मारने को भुजाओ पर हाथ फेरता है।**)

चौथा—जैसा भी जिसका मत हो, अपना-अपना मत अपने पास रहेगा, उसे वह प्रकट भी करेगा; तुम कृष्ण को भगवान् समझते हो, सर्वश्रेष्ठ पुरुष मानते हो, बल और ज्ञान मे अद्वितीय कहते हो, स्वार्थ-रहित घोषित करते हो, सच्चरित्र बताते हो, मै उसमे इनमें से एक भी सद्गुण नही मानता। मै उसे धूर्त्त, स्वार्थी, महत्त्वाकाक्षी तथा इतना ही नही, स्त्री-हत्यारा, चोर, लम्पट, व्यभिचारी, कायर और विषयी मानता हूँ। अपना-अपना मत है।

पहला—बस, सहन-शक्ति की अब सीमा हो चुकी।

[**चौथे मनुष्य से लड़ने को भिड जाता है। शेष कुछ लोग भी चौथे को मारते हैं। कई लोग उसे बचाते है और पहले और चौथे को अलग अलग करते है।**]

छठवाँ—(**पहले तथा अन्य व्यक्तियों से**) क्या विक्षिप्त के सग विक्षिप्त होना पडता है ? कहाँ हम लोग प्रभास-क्षेत्र चल रहे थे और कहाँ यह दूसरी लीला करने लगे। द्वारका मे सचमुच आजकल इस प्रकार के बहुत झगडे होने लगे है। चलो-चलो, शीघ्र प्रभास पर पहुँचना है, नही तो उत्सव का स्नान ही समाप्त हो जायगा। सारा देश उलट पडा है, क्या हम ऐसे मदभागी है कि इतने निकट रहने पर भी न पहुँचेगे ?

[छठवें के संग सब जाते हैं, पर चौथा नहीं जाता। वह उन्हे घूरता है और दूसरी ओर चला जाता है। परदा उठता है।]

चौथा दृश्य

स्थान—द्वारका मे कृष्ण के प्रासाद की दालान

समय—प्रात काल

[वही दालान है जो तीसरे अंक के पहले दृश्य में थी। कृष्ण खड़े हैं। उनकी अवस्था अस्सी वर्ष की होने पर भी मुख और शरीर वैसा ही है। वस्त्र श्वेत और शरीर भूषणों से रहित है। सिर खुला है। वृद्ध उद्धव का प्रवेश। उद्धव के बाल श्वेत हो गये हैं। मुख पर झुर्रियाँ पड़ गयी हैं।]

उद्धव—बधाई है, द्वारकाधीश, बधाई है, आपके अस्सी वर्ष के जन्म-दिवस की बधाई है। जन्म-गाँठ का उत्सव इस राज्य मे ही नही, किन्तु हिमालय से समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वी पर हुआ है। एक स्वर से आपका जयघोष हो रहा है। भगवन्, आपके स्वार्थ और फलेच्छा-रहित कार्यों के कारण, आप यद्यपि पृथ्वी के चक्रवर्ती राजा नही है, पर, सारे मानव-समाज के हृदय-सम्राट् हो गये है।

कृष्ण—**(मुस्कराकर)** उद्धव, आज तो तुमने भी एक साँस मे मुझे सचमुच ही भगवान् समझ मेरी स्तुति कर डाली।

उद्धव—और भगवान् कैसे होते है, नाथ? मै ही क्या, सारा ससार आपको परब्रह्म परमात्मा का पूर्णावतार मानता है।

कृष्ण—**(मुस्कराकर)** ऐसा नही है, उद्धव, मेरे कई निन्दक भी है;

आज है, इतना ही नही, सदा रहेगे, क्योकि कौनसा कार्य किस उद्देश से किया जाता है यह लोग बडी कठिनता से समझ पाते है। कई गूढ कार्य तो ऐसे होते है कि ऊपर से वे निन्दनीय दिखते है और उनका भीतरी रहस्य साधारण जन-समुदाय की समझ मे नही आता। पर, उद्धव, इन सब बातो की मुझे चिन्ता नही, मेरी आत्मा पूर्णत सुखी है।

उद्धव—ऐसे निन्दको के मुख आप ही काले होगे, भगवन्, इतना ही नही, वे स्वय ही अपने अन्त करण मे कष्ट पाते रहेगे।

कृष्ण—पर, उद्धव, सबके मुख सदा स्वच्छ और सबके हृदय सदा सुखी रहने की ही अभिलाषा करनी चाहिए।

उद्धव—(**कुछ लज्जित हो**) चाहिए तो ऐसा ही, पर, मनुष्य अपनी कृतियो के कारण दुखी हो ही जाता है। जो कुछ भी हो, हम लोग तो सदा इसीके इच्छुक रहते है कि अभी आप अनेक वर्ष इस भूतल पर विराजे और जगत् का कल्याण करें।

कृष्ण—(**मुस्कराकर**) हर मनुष्य अपने निश्चित कार्य के लिए ही जगत् मे आता है और वह कार्य हो चुकने के पश्चात् एक क्षण भी नही रह सकता। अब तो मुझे ससार मे अपने रहने का कोई प्रयोजन नही दिखता। इस समय दुष्टो एव अधर्म और अन्याय का नाश हो चुका है, धर्म, न्याय, सत्य और प्रेम की विजय हो चुकी है। उत्तर दिशा मे इतने दीर्घ काल से जो सुर और असुरो का कलह चल रहा था, वह भी सम्राट् बाण की उदारता के कारण अनिरुद्ध और उषा के विवाह से समाप्त हो गया, सुरो को उनका राज्य मिल गया एव सुरेश और असुरेश मे भी स्थायी सधि तथा गाढ मित्रता हो चुकी है। मेरा अब कोई कार्य तो शेष नही दिखता, हाँ, इस देश के रहनेवाले यादव अवश्य दिनो दिन मदमत्त होते जा रहे है।

उद्धव—(घबड़ाकर) तब क्या इनका भी अनिष्ट होगा, भगवन् ?

कृष्ण—जो मदोन्मत्त हो ससार के दु खो का कारण होते है, उनका नाश अवश्यभावी है।

उद्धव—परन्तु, प्रभो, आप सदृश उनका रक्षक होने पर भी ?

कृष्ण—मै धर्म, न्याय और सत्य की रक्षा कर सकता हूँ, अधर्म, अन्याय और असत्य की रक्षा करने जाऊँ तो स्वय भी उसीके सग नष्ट हो जाऊँ।

उद्धव—परन्तु, नाथ, यादवो के सुधार का प्रयत्न कीजिए।

कृष्ण—सो तो कर ही रहा हूँ, पर, वे सुधर नही रहे है। जब बिगडी हुई वस्तु सुधार के परे चली जाती है, तब उसका नाश ही होता है। मुझे तो यदुकुल का कल्याण नही दिखता।

[वृद्ध बलराम का प्रवेश। उनके केश भी श्वेत हो गये है और उनके मुख पर भी झुर्रियाँ दिखती है।]

बलराम—प्रभास-क्षेत्र की यात्रा का समय हो गया, कृष्ण, इस वर्ष तो तुम्हारे जन्मोत्सव के कारण सारा देश प्रभास की ओर उलट पडा है। सभी स्नान करने और तुम्हारे दीर्घजीवी होने की मगल-प्रार्थना करने जा रहे है। तुम तो, बन्धु, लोगो की दृष्टि मे सचमुच भगवान् के पूर्णावतार हो गये हो।

कृष्ण—सो तो मै नही जानता, आर्य, मेरी दृष्टि मे तो सारा विश्व ही भगवान् है, और यदि इसका पूर्ण अनुभव ही भगवान् का पूर्णावतार होना है, तो मुझे आप या कोई भी भगवान् का पूर्णावतार मान सकते है। पर, चलिए, प्रभास पर अवश्य चलूँगा।

[तीनों का प्रस्थान। परदा गिरता है।]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—प्रभास-क्षेत्र का एक वन-मार्ग

समय—संध्या

[दो व्याधों का धनुष-बाण लिए हुए प्रवेश।]

एक—ऐसा युद्ध कहीं देखा, बन्धु, कभी सुना भी? पशु भी इस प्रकार तो नहीं लडते।

दूसरा—मदिरा से मदमत्त थे। मत्तता मे कुछ सूझता है?

पहला—ऐसा मद कि पिता-पुत्र, भ्राता-भ्राता, ससुर-जामात्र, मित्र-मित्र, आपस मे लडकर मर गये और जब आयुध नहीं बचे तो ऐरक घास से लडे।

दूसरा—भयानक युद्ध हुआ, भयानक! कदाचित् ही कोई यादव बचा हो! सभी समाप्त हो गये! भगवान् श्रीकृष्ण की जन्म-गाँठ के उत्सव का यह परिणाम! **(लंबी साँस लेता है। कुछ ठहरकर दाहनी ओर देख)** देखना, वह दूर पर क्या दिखता है?

पहला—**(देखकर)** मृग है मृग। दिन भर मे आज कुछ न मिला। ऐसा बाण छोडो कि जिससे वह एक ही बाण का हो।

दूसरा—लो, अभी लो।

[बाण छोड़ता है। दोनो जिस ओर बाण छोड़ा जाता है, उसी ओर दौड़ते है। परदा उठता है।]

उद्धव—चलिए, महाराज, इस समय उनके निकट चलना चाहिए।

बलराम—नही, नही, उद्धव, मेरा साहस उनके निकट जाने का नही है। मुझे अब समुद्र मे ही शाति मिलेगी, और कही नही, और कही नही। **(शीघ्रता से प्रस्थान।)**

उद्धव—महाराज! महाराज!

[पीछे-पीछे दौड़ते है। परदा उठता है।]

सातवाँ दृश्य

स्थान—प्रभास-क्षेत्र पर समुद्र का किनारा

समय—सन्ध्या

[समुद्र और क्षितिज मिला हुआ-सा दिखता है। समुद्र में लहरें उठ रही हैं और क्षितिज पर बादल। सूर्य अस्त हो रहा है। आसपास के पर्वत, झरने और वृक्ष उसकी किरणो से चमक रहे है। कभी-कभी बादलों में बिजली चमक जाती है। इधर-उधर अनेक लाशें और मनुष्य-शरीर के कटे हुए अवयव पड़े है। एक वृक्ष के नीचे कृष्ण पत्थर से टिके, आधे लेटे हुए मुरली बजा रहे हैं, उनके पैर से रक्त बह रहा है। अधीर उद्धव का प्रवेश।]

उद्धव—**(निकट जाकर जोर से रो पड़ते है)** भगवन्! भगवन्!

कृष्ण—**(मुरली हटाते हुए मुस्कराकर)** कौन, उद्धव? क्यो, रोते क्यो हो? यादवो के नष्ट होने का रुदन है अथवा मेरे वियोग का? रोने का तो कोई कारण नही है।

उद्धव—महाराज, क्या रहा ? कुछ नही रह गया, सब गया, भगवन्, सब गया। यादव नष्ट हो गये, वीरवर बलराम ने आपकी यह दशा देख समुद्र मे समाधि ले ली और आप जाने को प्रस्तुत है, नाथ। यह मद भाग उद्धव ही रह गया।

कृष्ण—(**मुस्कराते हुए**) जिसका कार्य समाप्त हो जाता है, उसे जाना ही पडता है, जिसका कार्य शेष रहता है, उसे रहना। मैने तुमसे कहा ही था कि मदोन्मत्त यादवो का मै कल्याण नही देखता, यह भी कहा था कि मेरा भी कोई कार्य शेष नही दिखता, आर्य का भी कदाचित् कोई कार्य शेष न था, पर अभी तुम्हारी आवश्यकता जान पडती है। तुम्हे बचे हुए यादवो को मथुरा ले जाना है, क्योकि प्राकृतिक अवस्थाओ के कारण द्वारका की भी कुशलता नही दिखती, फिर मेरे जाने के दु ख मे, ससार को, ज्ञान-द्वारा तुम्ही सान्त्वना दे सकते हो। अभी तुम्हारा कार्य है, उद्धव।

उद्धव—(**रोते हुए**) परन्तु, भगवन्, मै सदा आपके सग रहा, आपका अनुचर रहा, आपके बिना कैसे रहूँगा ?

कृष्ण—यदि इतने दीर्घ काल तक मेरे सग रहने पर भी आज तुम्हे यह मोह उत्पन्न हो रहा है, तो मेरे सग रहने से तुम्हे लाभ ही क्या हुआ ? जब तुम्हारा कर्तव्य समाप्त हो चुकेगा, तब तुम चाहोगे, तो भी इस भूतल पर इस स्वरूप मे न रह सकोगे। जो सामने कर्तव्य आये, उसे निष्काम हो करते जाओ। (**कुछ ठहरकर**) अच्छा, उद्धव, अब जाता हूँ। देखते हो, सामने का विशाल आकाश-मण्डल और विशाल समुद्र; इसी आकाश मे मै भी व्याप्त हो जाऊँगा, इसी सागर की तरगों में मै भी विचरण करूँगा। देखते हो, उठते हुए बादल; इन्ही बादलो के सग मैं भी क्षितिज पर उठूँगा। देखते हो, बिजली, इसीके सग मै भी चमकूँगा।

देखते हो, सूर्य की किरणे, इनके सग मै भी आलोकित होऊँगा । चन्द्रमा की ज्योत्स्ना मे झलका करूँगा और तारो की दमक मे दमका करूँगा। पर्वतो, नदियो, झरनो, वृक्षो, लताओ मे व्याप्त हो जाऊँगा, और इन सब के परे भी जो कुछ इस सारे विश्व मे दर्शनीय तथा अदर्शनीय, वर्णनीय तथा अवर्णनीय है, मै समस्त मे प्रविष्ट हो जाऊँगा। सृष्टि के परे भी यदि कुछ होगा तो वहाँ भी मै होऊँगा। मुझे जाने मे कोई क्लेश नही हो रहा है, कोई नही। इस बाण से शरीर को जो कष्ट मिल रहा है, उससे मेरा कोई सम्बन्ध नही, कोई नही। बडे सुख, बडे उल्लास, बडे आनद से मै जा रहा हूँ। जाता हूँ, उद्धव, जाता हूँ, ऐसे स्थान को जाता हूँ, जहाँ धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय, सत्य-असत्य, प्रेम-द्वेष, पाप-पुण्य ऐसा द्वद्व नही है, जहाँ सभी निर्द्वंद्व है, एक है । इस मुरली के स्वरो के साथ ही जाता हूँ।

[कृष्ण नेत्र बंदकर मुरली बजाते हैं। कुछ देर में मुरली बंद हो जाती है।]

यवनिका-पतन

समाप्त